विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१४ दिसम्बर—१९९५ अंक—१२

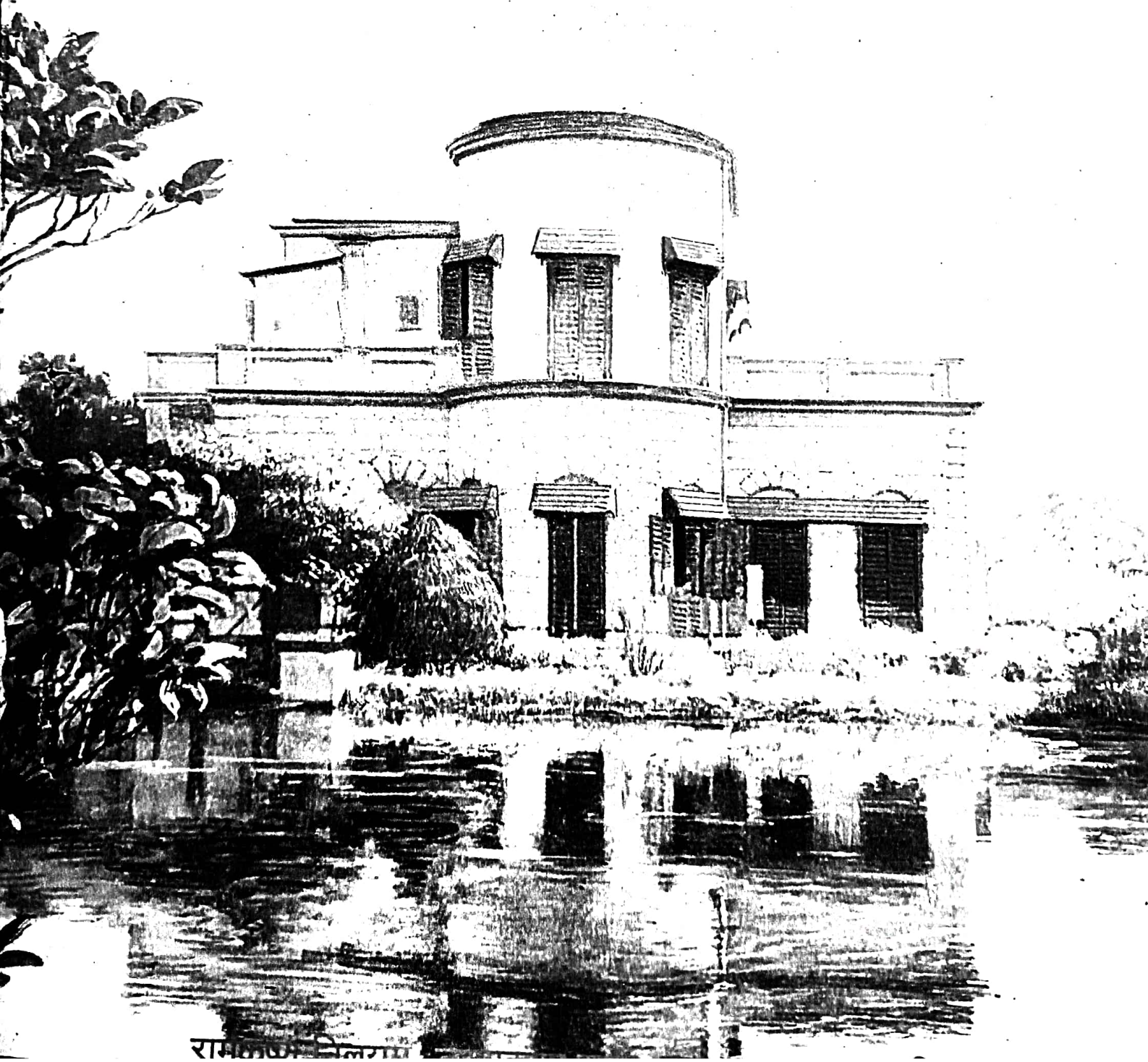

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१११. श्री जी. के. दीक्षित, बरोदा (गुजरात)
११२. श्री सत्य प्रकाश लाल, वाराणसी (उ. प्र.)
११३. श्री पूरण चन्द जैन लुमडिंग (आसाम)
११४. श्री राम आसरा वासुदेव लुमडिंग (आसाम)
११५. मार्च कलार टिम्बर प्रोडक्ट्स मंडरदिशा (आ०)
११६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल लंका (आसाम)
११७. श्री महेश गुरुवारा लुमडिंग (आसाम)
११८. श्री भोलानाथ उपाध्याय लुमडिंग आसाम)
११९. श्री अमुभाई पटेल—बडोदा (गुजरात)
१४०. श्री रामभगत सेमका—मद्रास
१४१. श्री ज्वाराम जोधपुर (राजस्थान)
१४२. महावीर बाल वाचनालय चन्दावल नगर (राज०)
१४३. श्री कृष्ण मलहोत्रा—नई दिल्ली
१४४. श्री गुरचरन चावला—दिल्ली
१४५. श्री आर० के० ग्रोवर—नई दिल्ली
१४६. श्री राकेश रेलहन नई दिल्ली
१४७. श्री जयप्रकाश सिंह कलकत्ता
१४८. श्री गंगाधर मिश्र एन० सी० हिल्स
१४९. श्री बी० बी० शेरपा लुमडिंग (आसाम)
१५०. श्री शंकर लाल अगरवाल नगांव (आसाम)
१५१. श्री रामगोपाल सेमका—कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी—इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी—जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. सुश्री एस. पी. त्रिवेदी राजकोट (गुजरात)
१५७. श्रीमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५८ श्री अशोक कौशिक—मालवीय नगर, नयी दिल्ली
१५९. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१६०. श्री रामकृष्ण साधना कुटिर, खण्डवा (म०प्र०)
१६१ श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म०प्र०)
१६२. श्री डी० एन० बानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६३. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आसाम)
१६४. डॉ० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर (उ०प्र०)
१६५. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मलिक (नई दिल्ली)
१६६. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. ब्रह्मशक्ति माँ शारदा माता (भजन)	स्वामी श्रीकान्तानन्द	२
३. माँ, मेरा हाथ थाम ले	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
४. श्री श्रीमाँ—हमारी ध्रुवतारा	श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द	६
५. ज्ञानदायिनी माँ सारदा	स्वामी सत्यरूपानन्द	१०
६. श्री सारदा देवी : लीला संवरण और उपदेश	स्वामी वेदान्तानन्द	१५
७. माँ तेरा गाँव (कविता)	ओंकारेश्वर	२१
८. माँ	स्वामी निखिलेश्वरानन्द	२२
९. देवलोक	स्वामी अपूर्वानन्द	२६
१०. बोध कथा (दो)		३०
११. समाचार		३२

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — १४ | दिसम्बर—१९९५ | अंक – १२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :

विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५० रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीमाँ सारदा ने कहा है

(१)

वह जो पानी देखते हो, जिसका स्वभाव ही नीचे की ओर जाना है, सूर्यकिरण उसे भी आकाश की ओर खींच लेती है। इसी प्रकार मन की गति भी स्वभाव से निम्नगामी है—भोग की ओर है। भगवत कृपा से वही मन ऊर्ध्वगामी हो जाता है।

(२)

भगवान के चरणों में सारी इच्छाएं समर्पित कर शरणागत होना सबसे अच्छा है। वे वही करेंगे जिसमें हमारा कल्याण हो। पर उनसे भक्ति और वासना-शून्यता की प्रार्थना करनी चाहिए। इनको इच्छाएँ नहीं माना जा सकता।

(३)

हमेशा श्री भगवान का कार्य करने की चेष्टा करो और इसके साथ ही जप और ध्यान भी करते रहो। अगर तुम इस प्रकार कार्य करोगे तो तुम्हारा मन अशुभ विचारों से रहित हो जाएगा। अगर तुम चुपचाप अकेले बैठे रहोगे तो सभी प्रकार के विचार उठेंगे और तुम्हारा मन अशान्त हो जाएगा।

(४)

मंत्र के द्वारा शक्ति चलती है। गुरु की शक्ति शिष्य में जाती है, शिष्य की गुरु में आती है। शिष्य यदि पाप करे, तो वह गुरु पर भी पड़ेगा। अच्छे शिष्य से गुरु का भी उपकार होता है।

(५)

जिसका मन शुद्ध होता है, वह सभी को शुद्ध समझता है।

ब्रह्मशक्ति माँ सारदामाता

— स्वामी श्रीकान्तानन्द
रामकृष्ण मठ हैदराबाद

(मध्यमावती—तीनताल)

ब्रह्मशक्ति माँ शारदामाता
विश्व का तुम आधार
प्रसन्नवदना होकर माता
करो मुझे भवपार ॥

जनम जनम से इन्तजार में
खड़ा हूँ तेरे द्वार
नाम तुम्हारा दयामयी माँ
खोलो हृदय का द्वार ॥१॥

एक एक दिन बीत रहा है
करके जीवन असार
पुत्रवत्सला नाम तुम्हारा
खोलो हृदय का द्वार ॥२॥

अनाथ और दुर्बल बालक मैं
प्रणाम बारंबार
महाशक्ति माँ नाम तुम्हारा
खोलो हृदय का द्वार ॥३॥

सम्पादकीय सम्बोधन

माँ, मेरा हाथ थाम ले

मेरे आत्मस्वरूप मित्रों,

एक मेला लगा था। मेले में बड़ी भीड़ थी। एक ऐसी महिला भी उस मेले में घूम रही थी। उसके पीछे-पीछे उसका छोटा बेटा चल रहा था। अचानक भीड़ का ऐसा रेला उठा कि बच्चा माँ से काफी दूर हो गया। वह चिल्ला पड़ा—"माँ, मैं खो गया। अरी माँ, तू कहाँ चली गयी ?" तभी उसकी माँ उसे ढूँढ़ती आ गयी और अपने पीछे-पीछे सावधानी से चलने को कहने लगी। बच्चे ने कहा—"माँ मेरा हाथ थाम ले, नहीं तो फिर खो जाऊँगा।" बच्चे की कातर पुकार सुनकर उस माँ ने अपने बेटे की ऊँगली पकड़ ली। और वह बच्चा पूरी आश्वस्ति से ठुमक-ठुमक कर विश्रब्ध मन से मेले में चहल-कदमी करने लगा।

मित्रों हमारी भी कुछ ऐसी ही स्थिति नहीं हो गयी है क्या ? इस संसार के चकाचौंध कर देने वाले मेले में, नाना प्रकार के भोग-एश्वर्यों के साधनों से भरे मेले में हम भी कहीं खो नहीं ? गये हैं क्या माँ हमसे छूट गयी है और हम माँ से दूर कहीं अटक-भटक गये हैं। योगाकर्षणों ने हमें भटका दिया है। हम चल तो रहे हैं। बेतहाश, भाग-दौड़ तो काफी कर रहे हैं, किन्तु हम यही नहीं जान पा रहे हैं कि हमारा गन्तव्य कहाँ है ? हम एक 'युवा-अपराध' या 'कर्तव्यहीनता' के शिकार हो गये हैं। काम या भोग के सीमित लक्ष्य, मिथ्या अहंकार के शोरगुल और माँ की अराधना की जगह कंचन की उपासना में आवद्ध हो गये हैं। अमेरिका की एलीनर स्टार्क ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "द गिफ्ट अनओपेण्ड" में अमेरिकावासियों के विषय में एक रोचक वाक्य लिखा है—"Americans have a 'road sense' What they need is a 'destination sense'. .....It is not more freeways we need but more ways to freedom". अर्थात् अमेरिकावासियों को 'पथ-बोध' है तो किन्तु जिस बात की उन्हें जरूरत है, वह है 'गन्तव्य-बोध'.....हमें और अधिक मुक्त-रास्ते नहीं चाहिए बल्कि मुक्ति की ओर ले जाने वाले अधिक रास्ते चाहिए। यही हमारी भी स्थिति है।

तो हम क्या करें ? मुक्ति का मार्ग किधर है ? मुक्ति का मार्ग श्री श्री माँ के शरणस्थल से होकर जाता है। हमें जगज्जननी श्री माँ सारदा पर एकान्त निर्भर होकर उनकी चरण-शरण में स्वयं को सोंप देना होगा। हम उन्हें नहीं पकड़ सकते। और यदि हम उन्हें नहीं पकड़ पाते तो एक ही उपाय है कि वे ही दयार्द्र हो, करुणापूर्वक हमें थाम लें। फिर हम दुनिया के मेलें में खोने से बच जायेंगे। गिरने से भटकने से, पथभ्रष्ट होने से बच जायेंगे।

हममें दुर्बलताएँ हैं, कमियाँ हैं, खामियाँ हैं। तो क्या हुआ ? हमारी माँ पतितपावनी ब्रह्मवारि हैं। मन्दिर में तो हम स्नान कर, पवित्र होकर जाते हैं, किन्तु गंगा में तो अपनी तमाम गंदगियों के साथ ही प्रवेश करते हैं। गंगा हमें दुत्कारती नहीं, स्वीकारती है, हमारी तमाम गंदगियों के बावजूद हमें ग्रहण करती है। गंगा हमारी माँ हैं। श्री श्री सारदा देवी हमारी माँ है। हमारे आराध्य श्रीरामकृष्ण की लीला सहधर्मिणी होने के नाते महीयसी नारी होने के नाते या संघ जननी होने के नाते वे हमारी माँ नहीं हैं। वे हमारी सचमुच की माँ, बिलकुल अपनी माँ, वास्तविक माँ हैं। आवश्यकता है तो बस इतनी कि वे हमारी उँगली पकड़कर हमें थाम लें। 'देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्' में जगन्माता भवानी की अभ्यर्थना करते हुए शंकराचार्य ने एक परम मनोरम हृदयस्पर्शी श्लोक में कहा—

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपति हारो पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानी त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥

—जो चिता का भस्म लगाये रहते हैं, विष का भोजन करते हैं, नंगे रहते हैं, जटाजूट धारण किये रहते हैं, गले में साँप की माला पहने रहते हैं, हाथ में मुर्दों का रूधर लिये रहते हैं, पशुपती और भूत-प्रेतों के स्वामी हैं, ऐसे अशुभ वेषधारी शिव ने भी जो एकमात्र जगदीश की पदवी प्राप्त की है तो उसका कारण मात्र इतना ही है कि हे भवानी, तुमने उनका पाणिग्रहण किया है।

कितनी विलक्षण बात है ! अशुभ-अमंगलवेशधारी शिव भी जगदीश हो जाते हैं अगर भवानी के साथ उनका पाणिग्रहण हो जाय ! यह है माँ की महिमा।

हमारे श्रीरामकृष्ण का भी तो यही हाल है। वे दिन भर विक्षिप्तों की भाँति माँ-माँ चिल्लाते हैं। कीचड़ में सन जाते हैं। कभी नंगे हो जाते हैं। तन-वसन की कोई सुध नहीं रहती। लेकिन श्रीमाँ सारदा से उनका पाणिग्रहण अकारण नहीं हुआ है। इसी पाणिग्रहण का तो फल है कि हमारे आत्मभोला श्रीरामकृष्ण 'अवतार वरिष्ठ' के रूप में जगदीश की पदवी पा लेते हैं। इसीसे तो स्वयं श्रीरामकृष्ण की स्वीकारोक्ति है—"वह क्या जो-सो है ? वह सारदा है, ज्ञान देने आयी है।.....यदि वह (श्रीमाँ) इतनी पवित्र होती और संयम खोकर मुझ पर आक्रमण कर बैठती तो कौन कह सकता है कि मेरे संयम का बाँध टूटकर देहबुद्धि आ जाती कि नहीं ?" और यह भी अकारण नहीं है कि फलहारिणी कालीपूजा की मध्यरात्री में श्री ठाकुर ने श्री श्रीमाँ को चरणवन्दना जगन्माता के रूप में की।

श्री माँ के रहते हमें किसी प्रकार का भय नहीं। वे केवल हमारी उँगली थामे रहें। बस। वे हमारी परम आश्वस्ति हैं, चरम अभयस्थली हैं, महत्तम रक्षा-कवच हैं। किसी एक भक्त को एक बार अभय और आश्वासन देते हुए श्री माँ ने कहा था—"तुम्हें चिन्ता क्या है, बेटा ? तुम लोगों का ख्याल

मेरे मन में रहता है। तुम्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा, तुम्हारे लिए मैं ही करती हूँ।" जो जप-ध्यान नहीं कर पाते उनके लिए माँ स्वयं जप करतीं और प्रार्थना करतीं—"हे ठाकुर, उन्हें चेतना दो, मुक्ति दो, उनके इहकाल और परकाल के बारे में तुम्हीं देखते रहो। इस संसार में बड़ा दुःख है। फिर उन्हें आना न पड़े।" ऐसी हैं हमारी माँ।

मित्रों, आज सब जानते हैं, अपने लीलासंवरण के कुछ ही दिनों पूर्व जब एक भक्त महिला ने माँ से पूछा—"माँ, हमलोगों का क्या होगा?" करुणा विगलित होकर अभय देते हुए माँ ने जो क्षीण स्वर में कहा था वह बड़ा विलक्षण है। ये चार महामंत्र हैं, महावाक्य हैं, विश्व के समग्र ताप-तप्त प्राणियों के लिए अमोघ रक्षा-कवच हैं। माँ ने कहा था—"डर क्या है?..... ....यदि शान्ति चाहती हो, बेटी, तो किसी का दोष मत देखना। दोष केवल अपना ही देखना। संसार को अपनाना सीखो। कोई पराया नहीं, बेटी, संसार तुम्हारा है।" ये ध्यान मंत्र हैं। हम सब को इन छोटे-छोटे चार वाक्यों में निहित गूढ़ अर्थ पर ध्यान करना चाहिए, चिंतन मनन करना चाहिए। फिर आप देखेंगे, इनके भीतर से नये-नये अर्थों के द्वार खुलेंगे, नये-नये भावों के पल्लव उग आएँगे और आपके भीतर नयी चेतना एवं नूतन संभावनाओं के फूल खिल जाएँगे। आप धन्यता को उपलब्ध करेंगे, एक अभय एवं आश्वस्ति में जिएँगे।

हमने चाहे कितने ही पापादि किये हों, पर यदि हमने एकान्त भाव से माँ का स्मरण किया तो कोई कारण नहीं कि हम अविलम्ब शुद्ध-बुद्ध-निरंजन न हो जाएँ। यही तो माँ की महिमा है। शंकराचार्य ने 'आनन्द लहरी' में भगवती भवानी की विलक्षण महिमा का वर्णन करते हुए कहा है—

अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथा रथ्यापाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम्।
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथामिव न जायेत विमलम्॥

—हे माँ, जिस प्रकार लोहा पारस से छू जाने पर तत्काल सोना हो जाता है और गलियों (के नाले) का जल गंगाजी में पड़कर पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न पापों से मलिन हुआ मेरा अन्तःकरण यदि प्रेमपूर्वक तुममें आसक्त हो गया तो वह कैसे निर्मल नहीं होगा?

हम देखते हैं कि श्री माँ, सारदा शिष्यों के पाप को स्वयं ले लेती थीं। इस कारण उन्हें दैहिक यातना भोगनी पड़ती थी। फिर भी वे पापी के प्रति दया और करुणा का अपूर्व भाव रखती थीं। पापी के प्रति वे घृणा-दृष्टि नहीं रखकर उस पर कृपा-वृष्टि करती रहती थीं। ऐसे ही कि तप्त भक्त को-आश्वासन देती हुई श्री माँ ने कहा—"भय क्या है, बेटा, सब समय ख्याल रखोगे कि ठाकुर तुम लोगों के पीछे हैं। मैं हूँ, मुझ माँ के रहते भला डर क्या है? ठाकुर तो कह गये हैं, जो लोग तुम्हारे पास

आएँगे, अन्त में उनका हाथ पकड़कर मैं ले जाऊँगा।' जिसकी जो खुशी क्यों न करो, अपनी इच्छा के अनुसार क्यों न चलो, तुम लोगों के लिए ठाकुर को तो अन्त में आना ही पड़ेगा। भगवान् ने हाथ-पैर (इन्द्रियादि) दिये हैं, वे तो अपना खेल खेलेंगे ही।"

यह है कदाचार करनेवालों के प्रति श्री माँ की अभय, आश्वासन की वाणी। आवश्यकता है केवल हम श्रीमाँ के प्रति एकान्त आन्तरिक प्रेम निवेदित करें। उनकी शरण में पड़े रहें और आर्त भाव से पुकार कर उन्हें कहते रहें—"माँ, मेरा हाथ थाम ले।" फिर तो उनके स्नेह की सुखद शीतल पाप-तापहारी छाँह में हमें चिर-विश्राम मिलेगा ही। जय श्री माँ,।

●

श्री श्रीमाँ सारदा अवतरण : १७ दिसम्बर

श्री श्रीमाँ—हमारी ध्रुवतारा

—श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द

[विगर ७ जुलाई १९९५ ई० को कलकत्ता स्थित काशीपुर उद्यान-भवन में रामकृष्ण मिशन के परम सहाध्यक्ष पूज्यवाद श्रीमत स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज ने जो व्याख्यान दिया था वह बंगला पत्रिका 'उद्बोधन' के अक्टूबर ९५ अंक में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत लेख उसी का हिन्दी अनुवाद है। जिसे हम साभार प्रकाशित कर रहे हैं। अनुवादक हैं—डॉ० केदरनाथ लाभ]

भारतीय धर्म-चेतना में मातृवन्दना या देवी-आराधना को सर्वदा एक ऊँचा स्थान प्राप्त होता रहा है। ईसाई धर्म या इस्लाम धर्म की ओर दृष्टिपात करने पर देखा जाता है कि वहाँ ईश्वर की पिता के रूप में कल्पना की गयी है, माता के रूप में नहीं। आज से ७०० वर्ष पहले तक ईसाई धर्म में ईश्वर की 'पिता' के रूप में ही स्तुति की गयी है। इसके बाद निश्चय ही कुछ क्षेत्रों में ईसाइयों ने माता मारियम या मेरी की स्तुति की है, तथापि उस स्तुति को कभी भी विशेष महत्ता नहीं मिली। बाइबिल में देखा जाता है कि ईश्वर ने पहले 'आदम' (पुरुष) की रचना की और इसके बाद आदम अकेला कैसा रहेगा—यह सब सोचकर आदमी की पसली की हड्डी से उन्होंने 'इव' (नारी) की सृष्टि की। स्वभावतः वहाँ नारी का स्थान गौण है। इसी प्रकार इस्लाम धर्म में भी मातृ-आराधना का कोई विशेष स्थान नहीं है। किन्तु हिन्दू धर्म में ईश्वर की मात्र पुरुष नहीं, नारी के रूप में ईश्वर की अराधना और स्तुति ने काफी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। भारतीय धर्म-साहित्य में पुरुष और प्रकृति को अविच्छेद्य माना गया है।

श्री श्रीरामकृष्ण और श्री श्रीमाँ के जीवन-दर्शन से हमलोग इस मातृ-उपासना और देवी-वन्दना का विषय हृदङ्गम कर सकते हैं। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, "जो ब्रह्म हैं, वही शक्ति हैं, वही माँ

हैं।" श्री रामकृष्ण के आध्यात्मिक जीवन की पूर्णता के लिए ही माँ का आविर्भाव हुआ है, यह भी ठाकुर और माँ के जीवन के अनुशीलन से ही भली-भाँति समझते हैं। श्री श्रीमाँ जब पहली बार दक्षिणेश्वर आती हैं, वह समय मानो एक असाधारण चित्रपट की भाँति हमलोगों के सामने तैर उठता है। दक्षिणेश्वर के घाट पर जब माँ अपने पिता के साथ आ उपस्थित होती हैं उस समय रात के प्रायः नौ बज रहे थे। श्री माँ के पिता के मन में एक सन्देह हो रहा था—बहुत दिनों के उपरान्त इस प्रकार आया हूँ, मेरी पुत्री को मेरे जामाता स्वीकार करेंगे या नहीं ? यह सन्देह स्वाभाविक था, क्योंकि उन दिनों कुलीन परिवारों की प्रथा के अनुसार ऐसी घटना अक्सर घटा करती थी। उन परिवारों में अत्यन्त साधारण कारणों से भी कुलीन पति अपने पत्नी का परित्याग कर दिया करते थे। किन्तु ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) ने माँ को देखते ही कहा, "तुम आयी हो ? अच्छा किया है !" इतना कह कर ही वे माँ के स्वागत-सत्कार के लिए व्यस्त हो उठे। इस परम आन्तरिकतापूर्ण स्वागत का दृश्य बड़ा सुन्दर है।

इसके उपरान्त श्री श्रीमाँ तो दिनभर नहबत में रहकर श्री रामकृष्ण के सांसारिक काम-काज सँभालने लगी। सदा बड़ा घूँघट खींचे रहतीं, अपने को छिपाये रखतीं। इसी से कोई माँ को देख भी नहीं पाता था। ठाकुर एक दिन बातों के क्रम में गोलाप-माँ से कहते हैं : "वह (श्री श्रीमाँ) सारदा है—ज्ञान देने आयी है। रूप रहने से किसी के द्वारा अशुद्ध मन से देखने पर उसका अकल्याण होगा, इसी से इस बार रूप ढँक कर आयी है।" जगन्माता एवं श्री श्रीमाँ में कोई भेद नहीं है—यह बात श्रीरामकृष्ण ने बार-बार कही है।

श्री माँ से जब एकान्त में श्रीरामकृष्ण जिज्ञासा के भाव से पूछते हैं : "क्या री, क्या तुम मुझे संसार-पथ में खींच लेने आयी हो ?" तब माँ ने बिना किसी संकोच के उत्तर दिया था : नहीं मैं तुम्हें संसार-पथ में क्यों खींचने जाऊँगी ? तुम्हारे इष्टमार्ग में ही सहायता करने आयी हूँ।"

जगन्माता के समक्ष श्रीरामकृष्ण ने समपूर्णरूप से अपने को समर्पित कर दिया था। जगन्माता ने भी उन्हें अपने साथ पूरी तरह युक्त कर लिया था। इस समपर्ण का भाव महाकवि कालिदास के 'कुमार सम्भव' महाकाव्य के पंचम सर्ग के एक श्लोक में सुन्दर रूप से व्यक्त हुआ है। वहाँ तपस्विनी पार्वती से सन्तुष्ट होकर देवादिदेव महादेव उनसे कहते हैं—

"अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि ! तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधन्ते।"

(कुमार सम्भव, ५/८६)

—हे अवनताङ्गि ! तुमने अपनी तपस्या से मुझे खरीद लिया है। अब से मैं तुम्हारा दास हूँ। चन्द्रशेखर की यह बात सुनकर तपस्विनी पार्वती अपनी तपस्या के सारे दुःख भूल गयी। फल प्राप्ति के बाद दुःख भी नयी शक्ति पा लेता है।

जगन्माता के निकट समग्रभाव से आत्मसमर्पण के एक और उदाहरण का उल्लेख हमलोग शंकराचार्य के 'देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र' से कर सकते हैं, जहाँ कहा गया है :

"परित्यक्ता देवा विविधविधिसेवाकुतुलतया
मया पंचाशीतेरधिकमुपनीते तु वयसि।
इदानीं मे मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदर जननि कं यामि शरणम्।"

—मैंने सभी देवताओं की पूजा-अर्चना छोड़ दी है, कारण यह है कि उस तरफ अनेक आचार आदि का पालन करना पड़ता है जो बहुत श्रमसाध्य है। अब मेरी उम्र पचासी से भी कहीं ज्यादा हो गयी हैं। इसलिए हे माँ, अब तुम्हारी कृपा की वृद्धि नहीं होगी तो मैं अवलम्बनहीन हो जाऊँगा, और तब मैं किसकी शरण में जाऊँगा !

माँ के चरणों में ऐसी ही लालसा हमलोग श्रीराम के कण्ठ से भी ध्वनित होते देखते हैं—

"यदि बलो जाउ जाउ, माँ, जाबो कार काछे।
सुधामाखा तार नाम, माँ, कार आछे ॥
यदि बलो छाड़ छाड़, माँ आमि ना छाड़िबो
बाजन नूपुर हये, माँ तोर चरणे बाजिबो ॥"

—यदि मुझसे बार-बार जाने को कहो तो माँ, मैं किसके पास जाऊँगा। तुम्हारे सिवा और किसका नाम अमृत से सना है ? यदि मुझसे छोड़ो-छोड़ो कहो तो माँ, मैं तुम्हें नहीं छोड़ने वाला हूँ। मैं घुँघरू बनकर माँ तुम्हारे चरणों में बँधकर बजूँगा।

इन सबके बीच मातृवन्दना का मुख्य स्वर है।

पश्चिमी देशों में इन दिनों नारी-मुक्ति का आन्दोलन प्रबल हो गया है। नारियाँ वहाँ बन्धन-मुक्त होना चाहती हैं। विदेश में कई जगहों पर व्याख्यान देने जाने पर मुझे इसकी वास्तविकता का ज्ञान हुआ है। एक बार एक व्याख्यान में कॉलेज की छात्राओं से जब कहा : 'तुमलोग थोड़ा बन्धनयुक्त जीवन यापन करो", तब उनलोगों ने इसका काफी विरोध किया क्योंकि वे Free होना चाहती हैं, मुक्त होना चाहती हैं। तब उन लोगों को मैंने सावित्री-सत्यवान की कथा सुनायी। कैसे सावित्री के हृदय की वास्तविक अभिलाषा, प्रेम और एकाग्र प्रार्थना मृत्यु तक को जीतने में सफल हुई थी—यह कहानी सुन कर वे सब विस्मित हुईं क्योंकि उन्होंने इसके पहले ऐसी कथा आजतक सुनी नहीं थी। असल बात है, नारीमुक्ति का अर्थ ही उग्र आधुनिकता नहीं है। केवल वेशभूषा, चलने-बोलने के ढंग के आधुनिक होने से ही किसी को 'आधुनिक' नहीं कहा जा सकता। पश्चिमी देशों के भद्रसमाज के लिए आवश्यक रीति के अनुसार वे दिन भर असंख्य बार केवल "Thank you, Thank you" बोलती रहती हैं। किन्तु उन सब शुष्क 'Thank you" में प्राणों का स्पर्श नहीं होता। शुष्क लौकिकता नहीं, उदार हृदय में सब के लिए प्रेम की भावना और मानव के कल्याण-साधन की ऐकान्तिक इच्छा ही मनुष्य को आधुनिक बना सकेगी।

इस प्रकार की यथार्थ आधुनिक दृष्टिभंगी हमलोग श्री श्रीमाँ के जीवन में पाते हैं। उन दिनों कुसंस्कार से आवृत समाजिक व्यवस्था में जहाँ विवेकानन्द तक को शिकागो से व्याख्यान देकर लौटने के बाद 'म्लेच्छ' देश से लौटने के बहाने दक्षिणेश्वर मन्दिर-प्राङ्ग में प्रवेश करने से रोक दिया गया, वहाँ हमलोग यह देखते हैं कि श्री श्री माँ भगिनी निवेदिता को स्नेहपूर्वक हृदय से लगाती हैं। इस का दृश्य अभूतपूर्व था !

समस्त सन्तानों के प्रति श्री श्रीमाँ का अहेतुकी प्रेम और स्नेह ही उनके जीवनाचार में हमलोग देखते हैं। जाति-धर्म का विचार किये विना, ऊँच-नीच का भेदाभेद विना रखे हुए वे अपनी सन्तानों को अपने समीप खींच लिया करती थीं। इसी से मातृ-वन्दना करने के समय हमलोग ठीक ही कहते है—

"स्नेहेन बध्नासि मनोऽस्मदीयं
शेपानशेपान् सगुणीकरोसि।
अहेतुना नो दयसे सदोपान्
स्वाङ्के गृहीत्वा यदिदं विचित्रम् ।।"

अमजद जब माँ के मकान की दीवार तैयार कर रहा था, तब नलिनी दीदी एक बार दूर से ही उसे खाना गिरा-गिराकर दे रही थी। यह देखकर श्री श्रीमाँ ने स्वयं परम स्नेह से उसे परोसकर खिलाया। यहाँ तक कि उसकी जूठी पत्तल हटा कर जूठे स्थान को साफ किया। यह थी हमारी माँ।

इसलिए माँ थीं एक गंभीर, उदार, सर्वजयी, प्रेममयी, मातृहृदय की पराकाष्ठा। माँ अवगुणनवती थीं। उन्हें पहचाना नहीं जा सकता। उनका स्वरूप जान लेने पर हमलोगों को और अधिक प्रयत्नपूर्वक उनके जीवन का अनुचिंतन करना होगा।

वर्तमान समाज में हमलोग जो चारो ओर केवल हिंसा-द्वेष, भ्रष्टाचार, मारकाट देखते हैं वह सब हमलोगों की अनुदारता और संकीर्णता का वाह्य प्रकाश है। माँ की अन्तिम वाणी थी—"यदि शान्ति चाहते हो तो किसी का दोष मत देखो।" बात छोटी है, किन्तु बहुत गुरुत्वपूर्ण है। निश्चय ही दूसरों का दोष देखना, परनिन्दा-परचर्चा बिल्कुल "family level industry" का पर्याय बन गयी है। इन सब नीचता और क्षुद्रताओं से मुक्ति का पथ हमलोगों के सामने ही रहता है। हमलोगों को उसी पथ पर चलना होगा। इस बीच पश्चिमी देशों में कहीं-कहीं महिलाओं ने "Sarada Society" की स्थापना की है। वे सब जानती हैं कि वास्तविक शान्ति पाने के लिए उनलोगों को श्री श्रीमाँ के निकट ही जाना होगा। "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य जायते महतो भयात्।" यदि हमलोग माँ के आदर्श को थोड़ा भी अपने जीवन में प्रतिफलित कर सकें तो वही चरम विनाश से हमलोगों की रक्षा करेगा।

ज्ञानदायिनी माँ सारदा

सचिव, रामकृष्ण विवेकानन्द, रायपुर

दुर्गा सप्तशती में आदि शक्ति, माँ दुर्गा सृष्टि में किस-किस रूप में विराजमान हैं, इसका बड़ा ही रोचक तथा प्रेरक प्रसंग है। एक स्थान पर कहा गया है—या देवी सर्वभूतेषू शक्तिरूपेण संस्थिता नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनयः। जो देवी सभी प्राणियों में शक्ति रूप में विद्यमान हैं, उन्हें प्रणाम।

सृष्टि का आरम्भ हो तो शक्ति के आलोड़न से होता है। शक्ति के इस आलोड़न का शामिल होना ही प्रलय है। मृत्यु है। जीत का दूसरा नाम शक्ति है।

इस शक्ति का आदि स्रोत एक ही है। जब यह शक्ति अचल निष्क्रिय स्थिति में होती है तब उसे ब्रह्म कहा जाता है। यह अचल और निष्क्रिय ब्रह्म अनिर्वचनीय तथा ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता की परिधि से परे है। इस रूप में यह अज्ञेय है।

किन्तु क्या यह सर्वथा सर्वकालीन अज्ञेय है? यदि ऐसा हो तो वह हमारे किस काम का? नहीं वह सर्वथा सर्वकालीन अज्ञेय नहीं है। अज्ञेय और अनिर्वचनीय ब्रह्म ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता की परिधि में तब मानों सिमट जाता है, जब वह सक्रिय शक्ति के रूप में लीला करता है। तब वह ज्ञान और अनुभूति का विषय हो जाता है। सक्रिय शक्ति रूपी ब्रह्म ही हमारी आराधना और उपासना का विषय है। वही अभय, वरदायी है। उसी की अराधना उपासना द्वारा उसी की कृपा से हमारा जीवन कृतकृत्य और धन्य होता है।

इस शक्ति की कृपा का प्रथम स्फुरण तब होता है जब वह हमारे मन और इन्द्रिय की गोचर होकर इस धराधाम में अवतरित होती है। इस अवतरण के पीछे हेतु क्या है? करुणा जीव के प्रति अहैतुकी कृपा।

उसकी करुणा और कृपा को पहचानने की क्षमता भी तो जीव में होनी चाहिए। शक्ति जब ऐश्वर्य और वैभव के साथ अवतरित होता है तब उसके प्रति जीव के मन में 'भय' मिश्रित श्रद्धा उत्पन्न होती है। वह इस शक्ति के सामने नत तो होता है।

अपनत्व बोध नहीं कर पाता। सखा कृष्ण के साथ कितना अपनत्व है। कितना ममत्व है। किन्तु वही अर्जुन उनके विराट तथा ऐश्वर्यशाली रूप के सामने कम्पित मात्र खड़ा है।

इस ईश्वरीय शक्ति से अपनत्व बोधकर उसके अंक में जाकर ही तो जीव शिव होता है। ऐश्वर्य की चकाचौंध में भला कभी अपनत्व होता है? अंक में जाया जाता है? इसलिए तो करुणामयी इस बार

ग्राम्य बाला के रूप में जयरामवाटी में रामचन्द्र मुखर्जी के घर आईं। और आईं भी प्रथम सन्तान सबसे बड़ी कन्या होकर। जन्म से ही मानों मातृत्व की मूर्ति। छोटे-छोटे पाँच भाइयों को दामोदर नदी में नहलाना। उनको खिलाना-पिलाना, एक शब्द में माँ के समान उनका पालन पोषण करना। तभी तो जयरामवाटी ग्राम की 'सारू' आज लाखों देशी-विदेशी भक्तों की माँ और होली मदर होकर उनके हृदय में विराज कर सब प्रकार से उनका मंगल कर रही है।

यह सब इसलिए संभव हुआ कि ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी साक्षात् लक्ष्मी होकर भी वे अत्यन्त कृपापूर्वक हम सबको अपनत्व बोध कराने के लिए अपने अंक में ले लेने के लिये दरिद्रता में रही। बाह्यिक ऐश्वर्य और वैभव की छाया तक नहीं उनमें।

अभी स्वयं किशोरी नववधु होकर दक्षिणेश्वर आई। आते ही भक्तों की माँ हो गई। ठाकुर श्री रामकृष्ण ने बोध करा दिया कि जो भवतारिणी मंदिर के गर्भ गृह में विराज कर भक्त की सेवा-पूजा ग्रहण कर रही है वही तो 'नहबत' में रहकर भक्तों के लिये भोजन बना रही है। जगज्जननी के दो रूप भवतारिणी और शारदामणि।

माँ तुम्हारा भवतारिणी रूप कितने लोग देख पाते हैं? कोई एक रामप्रसाद कोई एक रामकृष्ण और शायद कोई एक नरेन्द्र। इसलिए तो माँ करूणामयी तुम इस बार आई सारदामणि के रूप में हम सब की अपनी माँ होकर। "अमजद मेरी वैसा ही पुत्र है जैसा शरत्" ब्रह्मज्ञानी शरत महाराज और अपराधी अमजद के प्रति समान प्रेम, समान करूणा यह तुम्हें छोड़कर और कौन दिखा सकता था माँ? तुम्हारी करूणा, तुम्हारे प्रेमी कोई दूसरा नहीं कोई पराया नहीं। सब अपने हैं। तभी तो जगत कल्याण के लिये लीला सवरण के केवल पाँच दिन पहले अन्नपूर्णा की माँ को निमित बनाकर समस्त आध्यात्मिक साधना के सागर को गागर में उड़ेल कर सुख शांति का महामंत्र तुमने दिया, "यदि शांति चाहती हो बेटी तो किसी को दोष मत देखना दोष केवल अपना ही देखना। संसार को अपनाना सीखो। कोई पराया नहीं बेटी, संसार तुम्हारा ही है यही तो सूत्र है जीवन साधना का। यही उपाय है व्यक्ति के कल्याण का।

पराया होना, दूसरा होना, यही तो सारी अशान्ति के मूल में है। जब तक हमारी दृष्टि में दूसरा रहेगा, हम दुःख और अशान्ति से बच नहीं सकते। दूसरे के होते ही भेद शुरू होता है। भेद स्वार्थ को जन्म देता है। फिर अपनी सुविधा अपना सुख देखना पड़ता है। उसकी व्यवस्था करनी पड़ती है। और अपनी व्यवस्था करने में दूसरों की उपेक्षा न चाहकर भी हो जाता है और उपेक्षा हो जाने पर बदले में न चाहकर वह भी हमें घृणा के ब्याज के साथ वापस मिलती है। और यह घृणायुक्त उपेक्षा हमारी सुख-सुविधा के आयोजन में हमारे न चाहने पर भी विष का बूँद बनकर टपक पड़ती है तथा हमारे समस्त व्यक्तित्व को कड़वाहट से भर देती है। और यह सब होता है 'पराया' देखने पर दूसरा देखने पर। इसीलिए तो तुमने मंत्र दिया माँ, कोई पराया नहीं, संसार तुम्हारा है। इसे 'अपना' बनाना सीखो।

यही सीखना तो जीवन की साधना है। तभी तो साधना शिरोमणि अवतार वरिष्ठ ठाकुर ने कहा, "जब तक जीऊँ तब तक सीखूँ"। सीखने का यह क्रम मुक्ति पर्यन्त चलाना होगा।

ज्ञान की अधिष्ठात्री सरस्वती तुम इस बार आई हो सिखाने के लिये सारदा होकर । जीवन भर सबको अहैतुक कृपापूर्वक सार ही देती रही । इस निस्सार संसार में रहकर भी "सार" कैसे पाया जाये सारे जीवन तुमने यही तो दिखाया और सिखाया माँ । सुपुत्री होने का "सार" क्या है ? कोई तुमसे सीखे । सहधर्मिणी और गृहणी का 'सार' तुम दक्षिणेश्वर में दिखा गई । नववधुत्व का "सार" तुम कामारपुकुर की लीला में दिखा गई । मातृत्व के सार की तो तुम मूर्तरूप ही रही । संघ माता के रूप में करूणा विगलित हो अनधिकारी सन्तानों को शरण में ले उन्हें अधिकारी बना, गुरू कृपाका 'सार' तुम्हीं दिखा गई । अनासक्ति वैराग्य, विवेक और संन्यास जीवन का 'सार' संसार तुमसे सीखे जननी । संसार का 'सार' ही तुम थी ।

इसीलिए माँ यदि तुमको अपना बना ले तो फिर हमारे लिये कोई पराया नहीं रह जायेगा क्योंकि तुम्हीं तो संसार का 'सार' हो । तुमने ही तो विश्व-ब्राह्मण्ड पसारा है । तुम्हीं तो इसमें अनुस्यूत और ओत-प्रोत हो । कोई इसे तुम्हारी माया कहते हैं, तो कोई लीला । किन्तु हो तो माँ तुम्हीं । तुम्हारे अतिरिक्त तो सभी 'रिक्त' है खाली है । जो है अस्ति वह तो तुम्हीं हो । तुम्हीं तो भासमान हो रही हो । भाति और प्रेमस्वरूपिणी तुम्हीं तो एकमात्र 'प्रिय' हो । तुमसे विमुख होना ही तो पराया होना है । माँ तुमसे विमुख होने पर हो तो जगत् पराया लगता है और 'पराया लगते ही दोष दिखते हैं दूसरों के । अपनी आँखों में समाया मूसल भी तिनका दीख पड़ता है, पर दूसरों की आँखों का तिनका भी मूसल लगता है । इसीलिए तो तुमने चेतावनी दी—"मनुष्य पहले अपने मन को दूषित करता है तब दूसरों के दोष देख पाता है ।" दोष देखने के दोष से दूषित मन लिये हम जलते रहते हैं । इस दाह से बचने का उपाय भी तो तुमने बता दिया । माँ करुणामयी, कैसी तुम्हारी करुणा विष से विष कटता है । दोष देखना ही है तो अपने दोष देखो । कैसा अदभुत रसायन । दोष देखने की दुष्टवृति जब तक दूसरों के पीछे लगी रही तब तक इसने मन में दावानल जमा रखा था । इसकी दाह से दिन रात अशान्ति । किन्तु ज्यों ही इसे अपने पीछे लगाया अपना दोष देखने लगा कि अद्भुत परिवर्तन उसी क्षण से हृदय में धधकने वाला दावानल शान्त होने लगता है। दाह मिटने लगती है और आश्चर्य अपने दोष देखते-देखते हमारा मन निर्दोष और निर्मल हो उठता है । कैसा अद्भुत रसायन तुमने दिया है, माँ ।

"मैं सत् की माँ हूँ, असत् की भी माँ, हूँ । मेरे बच्चे यदि धूल और कीचड़ में सन कर आयें तो धूल झाड़कर मुझे ही तो उन्हें गोद में लेना पडेगा ।"

जगज्जनी । इससे बड़ी कृपा, ऐसी आपार करूणा मनुष्य क्या, विश्व-ब्रह्माण्ड के इतिहास में कहीं खोजे मिलेगी न भूतो न भविष्यति ? तुमसे विमुख होकर हम कब तक रह सकते हैं ? तुम्हारे बिना तो हमारा अस्तित्व ही नहीं रह सकता, माँ ।

किन्तु हमने अपने आपको असत् की अज्ञान की धूल में इतना सान लिया है कि हम तुम्हें भूल बैठे हैं । तुमसे विमुख हो गये हैं और इसीलिये तो संसार-नरक की ज्वाला में जल रहे हैं । दुःख और अशान्ति से छटपटा रहे हैं । इससे छूटने का कोई उपाय नहीं हैं माँ ? साधन-चतुष्टय, विवेक, वैराग्य, ज्ञान, कठोर तप आदि की बातें तो बहुत सुनी हैं । पर माँ उनकी ओर देखते ही लगता है, "नौने होकर चाँद

को पकड़ने की चाह। क्या हम चाँद को पकड़ पायेंगे ? यह सोचकर ही मन बैठ जाता है। निराशा घेर लेती है। लगता है ज्ञान वैराग्य के अधिकारियों की तो जाति ही अलग होती है।

तब क्या हमारा कुछ न होगा ? क्या हम संसारपंक में ही पड़े रहेंगे ? माँ हम तो तुम्हारी अति सामान्य सन्तान हैं इसीलिये तो हमारे मन में ऐसा सन्देह आता है। किन्तु ममतामयी तुम तो सर्वज्ञा त्रिकाल दर्शिनी हो, इसीलिये तो इतना ठोक बजाकर इतनी परीक्षा लेकर तब चरणाश्रय देने वाले ठाकुर से भी हम सब निरीह अनाधिकारी सन्तानों के लिये यह वचन ले ही लिया, "तुम्हारे (ठाकुर के) पास जो आयेगा, उसका यह अन्तिम जन्म होगा। और उसे तुम्हें दर्शन देना होगा।" और ठाकुर को यह मानना पड़ा कि तुम्हारी प्रत्येक सन्तान को फिर चाहे अंत समय में ही क्यों न हो, वे दर्शन देंगे तथा हाथ पकड़कर अपने धाम में ले जायेंगे। जननी, तुम्हारी करूणा में ही तो अवतारवरिष्ठ से यह करा लिया।

हम सबके लिये पथ कितना सहज कर दिया, माँ। तुमने कहा, "मन में सोचना हमारा और कोई हो न हो, एक माँ अवश्य है।" भवतारिणी, क्या इससे भी सहज कोई पथ हो सकता है ? कल्पना स्वयं उस पथ की कल्पना नहीं कर सकती।

साठ-पैंसठ वर्ष इस धरा-धाम में लीला कर तुम हमारी स्थूल आँखों से ओझल हो गई। तब क्या तुम अदृश्य और अज्ञेय हो गई ? निष्क्रिय, निर्गुण, निरपेक्ष उदासीन। नहीं माँ, ऐसा नहीं हो सकता फिर तुम आई ही क्यों थी ?

स्वयं ठाकुर ने ही तो हमें तुम्हारे आने का प्रयोजन बताया है ....."वह सारदा है, सरस्वती है, ज्ञान देने आई है। वह ज्ञानदायिनी है। महा बुद्धिमती। वह क्या कोई ऐसी वैसी है। वह मेरी शक्ति है।" ज्ञानदान। यही तो तुम्हारे आने का प्रयोजन है। यही युग की अनिवार्य आवश्यकता है। विश्व-ब्रह्माण्ड के रहस्यों को भेदने वाला मनुष्य अपने सम्बन्ध में कितना 'अज्ञ' है। वाह्य प्रकृति को जीतने के नाम पर अपने ही बनाये बन्धनों से वह किस प्रकार बंध गया है, अपने ही बुने जाल में वह कैसा फँस गया है। अपनी उत्पन्न की हुई शक्ति के द्वारा अपना ही विनाश करने पर तुला हुआ है। मानव जाति की इस आत्मघात से तुम्हारे दिये गए ज्ञान के अतिरिक्त और कोई नहीं बचा सकता है।

ज्ञान के क्षेत्र में भी तुम ज्ञान का 'सार' दे गई। तुमने कहा, "भगवान इसी मनुष्य शरीर के भीतर हैं। मनुष्य को उनको जानने उनको कारण ही भटकता हुआ मर रहा है। भगवान ही सत्य हैं और सब मिथ्या।"

यह वह ज्ञान है जो आधुनिक मानव को सामूहिक आत्मघात से बचा सकता है। आधुनिक मानव की कठिनाई यह है कि वह मिथ्या को ही सत्य समझे बैठा है भूल से वह यह समझ बैठा है कि उसके दुःख का कारण पड़ोसी है। 'दूसरी' के कारण ही वह दुःखी है, दरिद्र है, पीड़ित है। और उसका दूसरा समाधान उसने ढूँढ़ा—पड़ोसी का सिर फोड़ देना। दूसरों को मिटा देना। तभी सुखी और सुरक्षित रहा जा सकता है। अतः अपनी सुरक्षा के लिये तमन्चे से शुरू कर एटम और हाइड्रोजन बम तक बना

रखा है। नाखून काटने की नहरनी से जिस मनुष्य को अनायास ही मारा जा सकता है उसी मनुष्य से अपनी रक्षा के लिए उसने एटम और हाइड्रोजन बम बनाया है। और यह आदमी हर दूसरे दिन अपने पड़ोसी को धमकी देता है। याद रखना मेरे पास एटम और हाइड्रोजन बम है, तेरे सिर पर फोड़ दूँगा। पर वह एक क्षण के लिये भी नहीं सोचता कि भला आदमी जिसके सिर पर तू एटम बम फोड़ना चाहता है उसका सिर तेरे सिर से दूर नहीं है। तेरा एटम बम पड़ोसी के साथ-साथ तेरा सिर भी फोड़ देगा। दूसरी को मिटाने के साथ तू भी मिट जायेगा।

आधुनिक मानव को यहाँ रूककर एक बात समझनी होगी। यह ठीक है कि आज मनुष्य दुःखी दरिद्र और पीड़ित है। किन्तु उसकी पीड़ा और दरिद्रय का कारण उसका 'पड़ोसी' या दूसरा नहीं हैं। कारण है उसका अपना यह 'अज्ञान' कि उसने असत् को 'सत्' समझ लिया है। उसे यह जानना और अनुभव करना होगा कि भगवान की सत् हैं और सब असत्। भगवान को न जानने के कारण ही वह दुःख कष्ट पा रहा है तथा भटकता फिर रहा है। अतः यह बात ठीक-ठीक समझ लेना होगा कि भगवान को जाने बिना दुःख-कष्ट से मुक्ति नहीं मिल सकती है। इसलिये जैसे भी हो भगवान को जानना होगा। उससे घनिष्ट परिचय एवं सम्बन्ध जोड़ना होगा।

उसे खोजने कहाँ जायें? माँ ने दिखा दिया है कि भगवान इसी शरीर के भीतर विराजान है। अतः पहली बात जो स्मरण रखनी है वह यह है कि यह शरीर भगवाव का मन्दिर है, भोग विलास का रंग महल नहीं। इसलिये सजग सावधान होकर सतत् यह चेष्टा करनी होगी जिससे यह मन्दिर किसी तरह अशुद्ध और अपवित्र न हो पाये।

भगवान भीतर हैं। हमारा अंतःकरण इस देह-मंदिर का गर्भगृह है। वहीं वे विराजमान हैं। इसीलिये हमें खूब सावधान होना होगा कि जिससे भगवान का सिंहासन अशुद्ध न हो जाय, दिन-रात सावधान रह कर इसकी पवित्रता की रक्षा करनी होगी। शुद्ध अंतः करण में ही भगवान से हमारी भेंट होगी, परिचय होगा और हम उनके हो जायेंगे। एक बार उनका हो जाने पर अपना कुछ नहीं रहता। फिर मैं नहीं तू हो जाता है।

जब तक यह न हो तब क्या करें? साधना। शरीर को साधना होगा, मन को साधना होगा बुद्धि को साधना होगा। यह साधना कैसी करनी होगी वह भी तो माँ दिखा गई। जो कर्त्तव्य हमारे हिस्से में आया है उसका ठीक-ठीक पालन करना। सतत् कर्मठता आलस्य की छाया तक नहीं। और वह भी निष्काम।

निष्काम कर्म करते हुए भी एक कामना मन में सतत् जमाये रखनी होगी भगवान के प्रति प्रेम की कामना। तभी तो माँ ने कहा है, "सबके प्रति कर्त्तव्य का पालन करना किन्तु प्रेम करना केवल भगवान से।"

और जिसके प्रति हमारे मन में प्रेम होता है हम उसके लिये क्या नहीं करते। अपने प्रियतम को सुखी करने की कितना ललक हमारे मन में होती है। उनके सुख में ही हमारा सुख है। सभी कुछ

'प्रभुप्रीत्यर्थं' ही तो करना है। नर रूप में विराजमान इस प्रभु की सेवा के लिये ही तो यह आयोजन यह प्रतिष्ठान यह सारदा पीठ, यह विद्या मन्दिर, तथा और भी न जाने क्या-क्या बात है।

माँ प्रभु की पूजा की ये नव विधान भी तो तुम्हीं दे गई। नव सन्देह उठा तब असन्दिग्ध रूप से तुमने कहा, "नरेन जो कर रहा है, ठीक है। यह उनकी ही इच्छा है, उनका ही काम है।"

ये सभी प्रतिष्ठान हमारे पूजास्थल हैं। इसका प्रत्येक घटक हमारा उपास्य है। मनुष्य के अंतःकरण में विराजमान भगवान को जानने में उसकी सहायता करना हमारी सेवा है व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होना हमारा धर्म है। इस सेवा धर्म में अपना तन मन धन सब कुछ सतत् समर्पित करना हमारी उपासना है। व्यक्ति को इस उपासना का अवसर देना यही इस प्रतिष्ठान का प्रयोजन है। ज्ञानदायिनी हम सबके अंतःकरण में ज्ञान रूप में उद्भासित हों यही उनके चरणाविन्दों में सतत् प्रार्थना है।

(रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम' रायपुर द्वारा प्रकाशित 'विवेक ज्योति' से साभार)

●

श्री शारदा देवी : लीलासंवरण और उपदेश

—स्वामी दयानन्द ब्रह्मलीन

सन् १९१८ ई० के जनवरी महीने में सारदादेवी को जयरामवाटी जाना पड़ा। इस बार वे वहाँ प्रायः एक वर्ष तक रहीं। दूसरे वर्ष पूस महीने में उनकी जन्मतिथि के दिन उनको साधारण ज्वर हुआ। मलेरिया बुखार—बीच-बीच में ठीक रहती, फिर ज्वरग्रस्त हो जाती। इस प्रकार ज्वर—भोग करते-करते उनका शरीर काफी दुर्बल हो गया। इस बीमारी के समय भी अनेक भक्त जयरामवाटी गये थे और उनकी कृपा पायी थी।

उनकी रुग्णता का सामाचार पाकर स्वामी सारदानन्द ने उन्हें कलकत्ता ले आने की व्यवस्था की—सन् १९१९ ई० के फरवरी महीने में। जब वे कलकत्ता आयीं तब उनका शरीर अत्यन्त जर्जर और दुर्बल हो गया था। कलकत्ते के श्रेष्ठ कविराजों और डाक्टरों से उनकी चिकित्सा कराने की व्यवस्था हुई किन्तु किसी चिकित्सा से कोई लाभ नहीं हुआ। चिकित्सा के कुछ समय बाद चिकित्सकों

ने तय किया कि उन्हें कालाज्वर हो गया है। समस्त शरीर में दिन-रात दारुण ज्वाला रहती-दिन-रात में तीन-चार बार ज्वर हो आता था।

रोग जब काफी बढ़-चढ़ रहा था उसी समय उन्होंने राधू और उसके बेटे को जयरामवाटी भेज देने को कहा। इसी राधू को लेकर उन्होंने अपने मन में इस सुख-दुःख और हास-रुदन से भरे संसार को टिका रखा था। अब उसी राधू को भेज देने के उनके आदेश को उनके सेवक-सेविकाओं ने विपद समझा। राधू के नहीं रहने पर वे शरीर-त्यागकर चली जायँगी। सबने मिलकर उनसे राधू को रहने देने का अनुरोध किया। किन्तु वे अटल-अविचल रही, बोली, "नहीं माया काट दी है।"

इस दारुण रोग के समय भी जब तक संभव हुआ, वे अपने कार्य स्वयं करती रहीं। किसी के कुछ देर तक सेवा करने पर उनके मन में कचोट होती। वे सोचती सेवक या सेविका को बड़ा कष्ट होता है। कोई थोड़ी देर उनको पंखा झलता। पाँच मिनट होते-न-होते वे सेवक से कहती, नहीं, और हवा नहीं करनी है, तुम्हारा हाथ दुःख रहा है।"

बिछावन पर लेटे-लेटे ही वे, उनके घर में जो रहते थे अथवा जो लोग उन्हें देखने आते थे, उन सबकी खोज-खबर लेतीं। डाक्टर या कविराज किसी के आने पर, लौटने के पूर्व वे फल-मिठाई कुछ खाकर जायँ—इस बात पर उनका ध्यान रहता था।

उनके देहान्त के पाँच दिन पूर्व एक नारी भक्त उन्हें देखने आयी थी। उनके घर में प्रवेश करने के निषेध के कारण वह स्त्री दरवाजे के निकट बैठी थी। सारदादेवी ने बिछावन पर करवट बदलने के समय उस स्त्री को देखकर इशारे से अपने समीप बुलाया। स्त्री ने प्रणाम कर रोते हुए कहा, "माँ हमलोगों का क्या होगा? उन्होंने क्षीण स्वर में धीरे-धीरे उत्तर दिया, "यदि शान्ति चाहती हो माँ, तो किसी का दोष मत देना दोष अपना देखना। संसार को अपना बना लेना सीखो; कोई पराया नहीं है माँ, सारा संसार तुम्हारा ही है।" यही उनका अन्तिम उपदेश है। इसी एक उपदेश को मानकर चल पाने से हमलोगों का जीवन का सुख-शान्ति से भर उठेगा।

देखते-देखते दिन समाप्त हो गया। १९२० ई० की २१ जुलाई मंगलवार की रात के डेढ़ बजे उन्होंने शरीर त्याग दिया। दूसरे दिन उनके शरीर को बेलुड़ मठ ले जाकर गंगातट पर संस्कार हुआ, उस स्थान पर एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर निर्मित हुआ है। देश-विदेश के सैकड़ों नर-नारी उस मन्दिर में में उन्हें अपने अन्तःकरण की प्रणति अर्पित करते हैं।

विंश अध्याय

(शिक्षा)

विभिन्न वय के, विभिन्न अवस्था के नर-नारी दिनानुदिन सारदा देवी के निकट गये थे—उनकी बातें सुनकर प्राणों में शान्ति पाने के लिए, उनके उपदेश सुनकर तदनुसार अपने जीवन का निर्माण करने

के लिए। जिसकी जैसी आवश्यकता समझतीं वे अलग-अलग व्यक्ति को अलग-अलग प्रकार का उपदेश देती थी। उनके सरल उपदेशों में से चुन-चुनकर यहाँ कुछ संग्रहीत किये गये हैं।

(१) सर्वदा कार्य करना होगा। काम करने से शरीर और मन ठीक रहते हैं। पहले जब मैं जयरामवाटी में थी, दिन-रात काम करती रहती थी।

(२) कार्य अवश्य करना चाहिए कर्म करते-करते कर्म का बन्धन कट जाता है। तभी निष्काम भाव आता है। एक पल भी काम छोड़कर रहना उचित नहीं।

(३) थप्पड़ खाने पर (दुख में) बहुत लोग राम का नाम लेते हैं, किन्तु बचपन से फूल जैसे मन को जो ठाकुर (ईश्वर) के चरणों पर अर्पित कर पाता है, वही धन्य है।

(४) नये भक्तों को देव-सेवा का कार्य करने देना होगा, क्योंकि उन लोगों का नया अनुराग है, इससे वे सेवा अच्छी तरह कर सकते हैं। जैसे-तैसे सेवा करने से ही क्या होगा ? सेवापराध न हो, उस ओर ध्यान रखना चाहिए। तब क्या होगा जानते हो ? मनुष्य अज्ञानी है, यह जानकर वे क्षमा करते हैं। ....चन्दन में रुखड़ापन नहीं हो, फूल-बेलपत्र कीड़ों से खाये हुए नहीं हो। पूजा के कार्यों के समय जैसे अपने किसी अंग पर, बाल या कपड़े पर, हाथ नहीं लगे। एकान्त में यत्नपूर्वक यह सर्व करना चाहिए। और भोग-राग सब ठीक समय पर देना होगा।

(५) पाप-पुण्य का जहाँ प्रसंग चलता है, वहाँ जितने लोग रहते हैं उनमें से सबको अच्छे-बुरे का एक-न-एक अंश लेना ही पड़ता है।

(एक व्यक्ति न प्रश्न किया, 'ऐसा क्यों होगा ?')

सुनो माँ, कैसा होता है। कल्पना करो कि कोई आदमी तुम्हारे समीप उन लोगों के पाप-पुण्य की कथा कह गया। मन में कभी उस आदमी की बात उठते ही साथ ही साथ उसके अच्छे बुरे कार्यों का चिन्तन भी आ पड़ेगा। इस प्रकार वही अच्छा या बुरा दोनों ही तुम्हारे मन पर अपना कार्य कर जायेंगे।

(६) 'माँ' के धर्म-पत्र में सहायता कर सको तभी तो सही बेटे का कार्य किया। उनके हृदय का रक्त-पान कर इतने बड़े हुए हो, कितना कष्ट उठाकर उन्होंने तुम्हें मनुष्य बनाया है, उसकी सेवा करना अपना सबसे बड़ा धर्म समझना। तब यदि वे भगवान के पथ पर जाने में बाधा दें तब तो दूसरी बात है।

(७) (बाल-विधवा एक सुन्दर नारी के प्रति) किसी के साथ मिलना-जुलना नहीं, किसी का दामाद, समधी, कुटुम्ब आये उनके समीप तनिक भी रहना नहीं। रहो आप अपने में ही मन, जाओ नहीं किसी के भी घर। जिसके प्रति जो कर्त्तव्य है वह कर दो, किन्तु भगवान के अतिरिक्त और किसी से प्रेम नहीं करना।

(८) बुरे कार्यों की ओर मन सदा चला जाता है। अच्छा काम करना चाहने पर मन उसकी ओर आगे बढ़ना नहीं चाहता। पहले मैं नित्य रात के तीन बजे उठकर ध्यान करती थी। एक दिन शरीर के अस्वस्थ रहने के कारण आलस्यवश ध्यान नहीं किया, फिर वह कई दिनों तक छूट गया था। इसीलिए अच्छा कार्य करने में काफी आन्तरिक यत्न और दृढ़ता चाहिए।

(९) तोड़ सभी सकते हैं, किन्तु जोड़ कितने आदमी सकते हैं ? किसी की निन्दा, हँसी-ठट्टा सभी कर सकते हैं, किन्तु उसकी भलाई कितने आदमी कर सकते हैं ?

(१०) सहनशीलता का गुण बड़ा है। है। इससे बड़ा गुण और कुछ नहीं है।

(११) अच्छा कार्य करना ही उचित है। अच्छा करने से मन अच्छा रहता है, बुरा करने से कष्ट भोगना पड़ता है।

(१२) जिसका मन शुद्ध है वह सब कुछ शुद्ध देखता है। (गोलाप-माँ को देखकर बोलीं) इस गोलाप का मन शुद्ध है। वृन्दावन में माधवजी के मन्दिर में किसी के बाल-बच्चे ने मल-त्याग कर दिया था। सब कहते थे 'विष्ठा', 'विष्ठा', किन्तु कोई उसे फेंकने की चेष्टा नहीं करता था। गोलाप ने उसे देखकर अपनी धोती—नयी मलमल की धोती—फाड़कर उससे पोंछकर फेंक दिया। ..... इस गंगा के घाट पर यदि किसी तरह का गंदा रहता है तो गोलाप यहाँ-वहाँ से चिथड़े लाकर उसे साफ कर देती है, लोटा-लोटा पानी डालकर धो देती है। इससे लोगों को सुविधा होती है। उन्होंने जो शान्ति पायी इससे गोलाप का भी मंगल होगा, उनलोगों को शान्ति से इसे भी शान्ति मिलेगी। काफी साधना तपस्या करने से, पूर्वजन्म में काफी तपस्या किये रहने पर तभी इस जन्म में मन शुद्ध होता है।

(१३) बहुपाप, महापाप नहीं होने से क्या मन अशुद्ध होता है ? ..... अति पवित्रतावादी एक मन और किसी से शुद्ध नहीं होता। अशुद्ध मन अनायास ही शुद्ध नहीं होता। और अति पवित्रता के भाव को जितना बढ़ाओगे उतना ही वह बढ़ेगा।

(१४) साधन की बात कहो, भजन की बात कहो, तीर्थ-दर्शन की बात कहो, अर्थोपार्जन की बात कहो—सब जवानी में ही कर लेना चाहिए।..... वृद्धावस्था में कफश्लेष्मा से मनुष्य भर जाता है, शरीर में सामर्थ्य नहीं रहती, मन में बल नहीं रहता—तब क्या कोई काम संभव हो सकता है ?

(१५) जोश में आकर कई लोग अनेक बड़े-बड़े कार्य कर बैठते हैं। किन्तु आदमी की प्रत्येक छोटे-मोटे कार्य में श्रद्धा देखने पर ही ठीक-ठीक आदमी पहचाना जाता है।

(१६) (एक महिला खूब सजधजकर उन्हें देखने आयी थी। उस महिला को लक्ष्यकर उन्होंने कहा) देखो, स्त्रियों के लिए लज्जा ही है भूषण। देवता की सेवा में लगने पर ही फूल सबसे अधिक सार्थक होता है; नहीं तो उसका पेड़ पर सूख जाना ही अच्छा है। किन्तु मुझे यह देखकर बड़ा कष्ट होता है कि जब बाबू लोग कभी फूल तोड़ा करते हैं, कभी इस प्रकार हाथ में लेकर नाक के समीप

एक बार रखकर कहते हैं—'वाह, खूब सुगन्ध है !' ओ माँ, दूसरे ही क्षण उसे मलकर फेंक देते हैं। जूते से ठोकर मारकर चल देते हैं। आँखों से देखते तक नहीं।

(१७) मनुष्य के मन पर आघात करनेवाली बात क्या बोलनी चाहिए ? बात सच्ची होने पर भी उसे अप्रिय रूप में नहीं बोलना चाहिए। बाद में ऐसा ही स्वभाव हो जाता है। मनुष्य की आँखों की लाज के मिट जाने पर फिर मुख में कुछ रुकता नहीं। ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) कहते थे, "किसी लंगड़े से यदि पूछना हो कि 'तुम लंगड़े कैसे हो गये ? तो ऐसा पूछना चाहिए—तुम्हारे पाँव इस प्रकार मुड़ कैसे गये' ?"

(१८) संसार में कितने प्रकार के लोग होते हैं। सब सहनकर रहना होगा। ठाकुर कहते थे, श, ष, स—तीन स है। जो सहता है वही रहता है।"

(१९) ठाकुर के सत्य की क्या सीमा थी ? हमलोगों में उनकी तरह का कौन हुआ ? ठाकुर कहते थे, कलियुग में सत्य ही तपस्या है। सत्य को पकड़े रहने पर भगवान को पाया जा सकता है।'

(२०) घर में रसोई के सारे समान हैं, (किन्तु) रसोई पकाकर खाना होगा। जो जितना पहले पकायेगा वह उतना ही पहले खा पायेगा। कोई सबेरे खाता है, कोई शाम को, कोई आलस्य के कारण रसोई पकाने के भय से उपवास करता है। ... ... जो जितना अधिक साधन-भजन करता है वह उतना ही शीघ्र दर्शन पाता है। चूँकि हमेशा साधन-भजन नहीं कर पाते हो अतः ईश्वर का कार्य समझकर कार्य करने की आवश्यकता है।

(२१) (किस प्रकार ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है ?) केवल उनकी कृपा से होगी। लेकिन ध्यान-जप करना होगा। उससे मन का मैल कटता है। पूजा, जप-ध्यान—ये सब करने होंगे। जैसे फूल को हिलाने-डुलाने से सुवास निकलता है, चन्दन घिसते-घिसते गन्ध बाहर निकलती है उसी प्रकार भगवत् तत्व का विवेचन करते-करते तत्वज्ञान का उदय होता है। यदि वासना रहित हो पाओ तो अभी ईश्वर-लाभ होगा।

(२२) कार्य अवश्य करना चाहिए। काम करने से मन ठीक रहता है। तब भी जप-ध्यान और प्रार्थना की भी विशेष आवश्यकता है। अन्ततः सुबह-शाम एकबार बैठना ही होगा। वह हुआ जैसे नाव का मस्तूल होता है। सायंकाल थोड़ा बैठने से पूरे दिन में क्या अच्छा किया, क्या नहीं किया इसका विचार आता है। इसके बाद विगत काल के मन की अवस्था के साथ आज की अवस्था की तुलना करनी होगी। काम-काज के साथ सुबह-शाम ध्यान नहीं करने से क्या करते हो, क्यों नहीं करते हो, यह कैसे समझोगे ?

(२३) सर्वदा उनका (भगवान का) स्मरण-मनन कर प्रार्थना करनी होगी, प्रभु, सद्बुद्धि दो। हर घड़ी जप-ध्यान कितने आदमी कर पाते हैं ? पहले थोड़ा करता है। ... ... बैठकर मन को संयमित नहीं करने से ही मन अनेक प्रकार के उपद्रव करता है।

(२४) जैसे जल है, जिसका स्वभाव ही नीचे की ओर जाना है, उसे भी सूर्य की किरण आकाश में खींच लेती है, उसी प्रकार मन का तो स्वभाव ही नीचे की ओर—भोग की ओर—जाना है। उसे भी भगवान की कृपा ऊर्ध्वगामी कर लेती है।

(२५) उनका स्मरण कर खाना-पीना। जो कुछ खाना, भगवान को देकर खाना। अप्रसादी अन्न नहीं खाना चाहिए। जैसा अन्न खाओगे वैसा रक्त बनेगा। शुद्ध अन्न खाने से शुद्ध रक्त होगा, मन शुद्ध होगा, शरीर में बल होगा। शुद्ध मन में शुद्ध भक्ति होता है, प्रेम होता है।

(२६) भगवान-लाभ होने से और क्या होता है। क्या दो सींगे निकल आती है ? नहीं, मन शुद्ध होता है। शुद्ध मन से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

(२७) मनुष्य अभी है अभी नहीं है। कुछ भी साथ नहीं जायगा। एकमात्र धर्म-अधर्म ही साथ जायेंगे। पाप-पुण्य मृत्यु के बाद भी साथ जाते हैं।

(२८) ईश्वर के ऊपर निर्भर होकर रहना होगा। उन्हें अच्छा करना है' करें, डुबाना है, डुबाएं। तब भी अच्छे कार्य करते जाना होगा। और वह भी, वे जैसी शक्ति दें, उसी के अनुसार।

(२९) ईश्वरेच्छा के बिना कुछ होना संभव नहीं—एक तृण भी नहीं हिलता।

(३०) ईश्वर ही जीव जन्तु सब बन गये हैं तथापि संस्कार और कर्म के अनुसार सभी अपने-अपने कर्म-फल का भोग करते हैं, सूर्य एक हैं, किन्तु स्थान और वस्तु भेद से उनका प्रकाश भिन्न-भिन्न रूप का होता है।

(३१) भगवान के लिए कौन सब कुछ त्याग कर पाता है ? ईश्वर के शरणागत होने से विधि का विधान खंडित हो जाता है। भगवान-लाभ होने से और क्या होता है ? क्या दो सींगें निकल आती हैं ? नहीं, सत्-असत् का विवेक आता है, ज्ञान-चैतन्य होता है, जन्म-मृत्यु के पार हुआ जाता है।

(३२) श्रीरामकृष्ण ने कहा था, जिसे है, वह दान करे; जिसे नहीं है, वह जप करे (भगवान का नाम - स्मरण करे) यह भी नहीं कर पाये तो शरणागत हो। —मात्र इतना ही मन में धारण किये रखने से हो गया कि मुझे एक आदमी देखने वाले हैं, एक माँ है या एक पिताजी हैं।

(३३) ईश्वर के निकट रो-रोकर मन का दुःख उन्हें सुनाना। व्याकुल हो रो-रोकर कहो, ठाकुर, मुझे अपनी ओर कर लो, मुझे शान्ति दो।" इस प्रकार करते-करते तुम्हारों प्राणों में स्वतः शान्ति आयगी।

(३४) साधन करते-करते देखोगे कि जो मेरे भीतर हैं, वही तुम्हारे भीतर भी हैं। कहार, बागदी और डोम के भीतर वही हैं। तभी तो मन में दीन-भाव आयेगा।

(३५) मन पागल हाथी के समान है। वह वायु के समान वेग से निकलता है। इसी से सत्-असत् का विचार कर सब कुछ देखना होगा और भगवान के लिए खूब खटना होगा।

माँ तेरा गाँव

—ओंकारेश्वर
लखनऊ

ममता की छाँव में बसा माँ तेरा गाँव !
पोखर पानी सुरभि दोहिनी
चिर तपस्विनी-सी सरोजिनी
पीपल आम बेल वट शोभित
वकुल-मुकुल युत ठाँव !
ममता की छाँव में बसा माँ तेरा गाँव !

नित्य तुम्हारे दर्शन-लोभी
पुत्र-पुत्रियों का जमघट है
जयरामबाटी की माटी माँ
कान्हा की राधा का पट है
आमोदर की धार यमुन-सी
सबको देती दाँव
ममता की छाँव में बसा माँ तेरा गाँव !

हृदय-बिहारी रामकृष्ण-संग
महातीर्थ कामारपुकुर में
आयीं धरती को पवित्र कर
जग पूजित श्रीपाँव
ममता की छाँव में बसा माँ तेरा गाँव !

माँ

स्वामी निखिलेश्वरानन्द
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

माँ ! न जाने कितने भावों का उद्दीपन है यह छोटा-सा शब्द—माँ ! कैसा मधुर ! कितना सुन्दर ! खालील जिब्रान कहते हैं। मानवजाति के होठों का सबसे सुन्दर शब्द है—माँ, और सबसे सुन्दर पुकार कोई हो तो वह पुकार है 'मेरी माँ।' यह एक ऐसा शब्द है, जो आशा और प्रेम से भरा है। एक मधुर और ममता से पूर्ण शब्द जो हृदय की गहराई से आता है। माँ सब कुछ है—शोक में वह हमारा आश्वासन है; दुःख में वह हमारी आशा है, दुर्बलता में वह हमारी शक्ति है। वह प्रेम, करुणा, सहानुभूति और क्षमाशीलता का स्रोत है।

विश्व की महान विभूतियाँ—संत साहित्यकार, कलाकार, सम्राट, नेतागण अपनी महानता का श्रेय अपनी जननी को देते हैं। जॉर्ज हर्बर्ट कहते हैं, हर एक जाति, में, हर एक धर्म में, हर एक देश में और हर एक युग में मनुष्य की माता उसे जैसा बनायें वैसा ही वह होता है। नेपोलियन कहते हैं, "किसी भी बालक की भावी उन्नति या अवन्नति का आधार उसकी माता पर आधारित है। मैंने कर्त्तव्यनिष्ठा और धैर्य अपनी माता की गोद से सीखा है।" अब्राहम लिंकन कहते हैं, "मैं जो कुछ कर सकता हूँ और जो कुछ हो सकता हूँ वह मेरी दिव्य माता का प्रसाद है।"

महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, शिवा जी, सर आशुतोष मुखर्जी, श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, विनोबा भावे, हेलेन केलेर, कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी रामतीर्थ, आदि शंकराचार्य—सभी की मातृभक्ति और उन पर उनकी माता का प्रभाव सर्वविदित है।

श्रीरामकृष्ण परमहंस तीर्थयात्रा करने वृन्दावन गये तब उन्हें वह स्थान इतना पसंद आ गया कि उन्होंने वहीं रह जाने का निर्णय कर लिया। किन्तु बाद में अपनी जननी माँ चन्द्रामणि देवी का ख्याल आया—"मेरे सिवा कलकत्ते में उन्हें कौन देखेगा ?" यह विचार आया और तुरन्त ही कलकत्ते की ओर जाने के लिए वे निकल पड़े। त्यागियों का सम्राट होते हुए भी वे माँ की सेवा के कर्त्तव्य को न भूल सके।

अमेरिका में व्याख्यान देते समय स्वामी विवेकानन्दजी ने अपनी जननी भुवनेश्वरी देवी के बारे में कहा था—"वे जगत में मुझे लानेवाली तपस्विनी थीं, जन्म के पहले वर्षों तक अपना शरीर पवित्र रखा, अपने वस्त्र पवित्र रखे, अपने भाव पवित्र रखे। उन्होंने यह सब किया, इसीलिए वे पूजने योग्य हैं।

एक यहूदी कहावत के अनुसार "ईश्वर सशरीर सभी जगह पहुँच नहीं सकता। इसलिए उसने माता का सर्जन किया। दुर्गा-सप्तशती में कहा है, 'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता' यह

जगन्नमाता देवी सभी जीवों में मातृ रूप से विराजमान है।' हजरत मोहम्मद पैगम्बर कहते हैं "तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारी माता के चरणों के नीचे हैं।"

हमारे शास्त्रों में भी कहा है—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

'माता और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान है।'

मनुस्मृति के अनुसार —

उपाध्यायान्दशाचार्यं आचार्याणां शतं पिता।
सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणतिरिच्यते॥

दस उपाध्यायों से बढ़ कर एक आचार्य है, सौ आचार्यों से बढ़ कर एक पिता हैं और हजार पिताओं से बढ़कर एक माता है।

सांसारिक संबंधों में सबसे अधिक निःस्वार्थ प्रेम होता है—माता का शिशु के प्रति। माँ के प्रेम में ईश्वर के प्रेम की छाया की अनुभूति होती है। हाल ही में पाश्चात्य देशों में नारी स्वातंत्र्य आंदोलन के साथ-साथ ईश्वर को 'माता' के रूप में भजने का अधिकार प्राप्त करने का आंदोलन भी शुरू हुआ है। ईसाई धर्म में अब तक ईश्वर को 'पिता' (Fathers) के रूप में ही संबोधन करने की इजाजत थी, अब ईश्वर को 'माता' (Mothers) के रूप में संबोधन करने की मंजूरी मिल गई है। हमारी भारतीय संस्कृति में तो वैदिक काल के पूर्व ही ईश्वर को माता के रूप में भजने की परम्परा है।

यह युग नारी स्वातंत्र्य का नारी जागरण का है। नारियों-माताओं द्वारा एक नये युग का प्रारंभ होने वाला है। इसीलिए इस युग के अवतार श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में नारी सम्मान का—मातृपूजा का विशेष महत्व देखने को मिलता है। श्रीरामकृष्ण देव ने विभिन्न धर्मों का विभिन्न मार्गों की साधना की परन्तु साधना का प्रारंभ माँ काली की पूजा से किया। एक नारी को भैरवी ब्राह्मणी को गुरु रूप में स्वीकार कर उनसे ६४ तंत्रों की साधना उन्होंने सीधी अपनी धर्मपत्नी श्रीमाँ शारदा देवी की जगन्नमाता के रूप में षोड्षी पूजा की और अपनी सभी साधनाओं का फल उनके चरणों में समर्पित किया और उनको समस्त जगत की माता के उच्चत्तम आसन पर विराजमान किया। १८८६ ई० में श्रीरामकृष्णदेव के तिरोधान के बाद ३४ वर्षों तक श्रीमाँ सारदा देवी ने विश्व जननी के रूप में लीला की।

एक बार श्रीमाँ शारदा देवी को किसी भक्त ने पूछा, "माँ, अन्य अवतारों में तो देखने को मिलता है कि पहले शक्ति का तिरोभाव होता है, पर इस समय तो ठाकुर पहले चले गये, ऐसा क्यों हुआ?" श्रीमाँ ने उत्तर देते हुए कहा, "बेटे, ठाकुर (श्रीरामकृष्ण देव) ईश्वर से मातृत्व का प्रचार करने मुझे पीछे छोड़ गये हैं।"

कैसी अद्भुत थी यह मातृत्व की लीला। गरीब-अमीर, ऊँच-नीच, पुरुष-स्त्री- आबाल-वृद्ध, सज्जन-दुर्जन, सन्यासी-गृहस्थ, पापी-पुण्यात्मा सब पर जात-पात के या 'धर्म के भेदभाव' के बिना करुणारूपिनी श्रीमाँ सारदा देवी ने अहैतुक कृपा बरसायी थी, मातृस्नेह का वर्णण किया था और आज भी सूक्ष्मरूप में कर रही हैं। इसलिए तो अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस, रूस, जापान, हॉलैंड, बांग्ला

देश आदि देशों में से हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी, यहूदी, बौद्ध, जैन आदि लाखों नर-नारी श्रीमाँ सारदा देवी के स्नेह पाश में बँध रहे हैं।

कई लोगों का ऐसा अनुमान है कि अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द और श्रीरामकृष्ण को ही अधिक मानते होंगे। परन्तु कुछ साल पूर्व अमेरिका के हॉलीवुड की वेदान्त सोसायटी के अध्यक्ष स्वामीजी ने एक बार बात करते समय बताया कि वहाँ अमेरिका में) भक्त लोग श्रीमाँ सारदा देवी को अधिक चाहते हैं, क्योंकि वहाँ का समाज हैं। वे ऐसा स्थान खोजते हैं, जहाँ उनको, पापी-तापियों को सहारा-आश्वासन मिले। श्रीमाँ सारदा देवी के ये वचन "मैं सज्जनों की भी माँ हूँ, दुर्जनों की भी माँ हूँ।" बालक यदि अपने को कीचड़ से सान ले तो माता को ही उसे साफ करके गोद में लेना पड़ता है न? उनको आकर्षित करते हैं। श्रीमाँ सारदा देवी मानो सभी को आमंत्रित कर रही हैं आओ, आओ पापी-तापी, दुःखी सब आओ। मैं तुम्हारी माँ हूँ कहने की माँ नहीं, मात्र गुरु पत्नी नहीं, किन्तु सच्ची माँ।"

आदि शंकराचार्य 'अपराध क्षमापन स्तोत' में लिखते हैं—'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।' "पुत्र कुपुत्र हो सकता है परन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती।"

श्रीमाँ सारदा देवी का जीवन जैसे इस उक्ति का साक्षात प्रमाण है।

एक बार बेलुड़ मठ में साधु ब्रह्मचारी गंगा में स्नान कर रहे थे। एक ब्रह्मचारी को (नगेन को) इन लोगों ने कहा, "आज तो महापुरुष महाराज तुम्हें दो पैसे देनेवाले हैं।" ब्रह्मचारी नगेन घबड़ा गया। महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्दजी) सब बेलुड़ मठ का कारबार संभालते थे। कोई साधु-ब्रह्मचारी यदि मठ के नियम का ठीक से पालन न करता तो उसे दो पैसे दे दिये जाते। (गंगा पार करने के लिए नाव में जाने का किराया तब दो पैसे थे।) अर्थात् मठ से निकाल दिया जाता था। ब्रह्मचारी नगेन इतना डर गया कि किसी को भी कहे बिना वस्त्रादि वगैरह कुछ भी लिए बिना उसी समय श्रीमाँ सारदा देवी के पास जाने के लिए जयरामबाटी की ओर चल पड़ा। नंगे पाँव करीब 70 मील का फासला तय कर, थक कर वह जब जयरामबाटी पहुँचा तब उसके मैले कपड़े बिखरे हुए बाल देखकर पहले तो कोई समझ भी न सका कि यह बेलुड़ मठ से आया होगा। परिचय मिलने पर श्री श्रीमाँ ने उसे वस्त्र दिए, अच्छी तरह खिलाया और स्वामी शिवानन्दजी को पत्र लिखवाया, बेटा तारक, छोटे नगेन ने अपराध किया है, इससे तुम उसे निकाल दोगे इस डर से पूरा रास्ता चलता हुआ मेरे पास आया है तो बेटे, माँ तो कभी बेटे का दोष देख नहीं सकती। उसे कुछ कहना नहीं।" उत्तर मिलने तक उन्होंने नगेन को अपने पास अच्छी तरह रखा। पत्र का तुरन्त उत्तर आया।" छोटा नगेन आपके पास आया है, जानकर हमारी चिन्ता दूर हुई है, हम उसे खोजते थे कि कहाँ गया। उसे भेज देना। यहाँ पुजारी का अभाव है। मैं उसे कुछ नहीं कहूँगा।" पत्र मिलते ही श्रीमाँ ने नगेन को बेलुड़ मठ भेज दिया। मठ में पहुँचते ही स्वामी शिवानन्द ने उसे गले लगा लिया और कहा, 'बेटे, तू मेरे विरुद्ध नालिस करने के लिए हाईकोर्ट तक पहुँच गया।"

जयरामबाटी के पास ही के गाँव के एक संपन्न परिवार के पढ़े-लखे युवक ने श्रीमाँ से दीक्षा ली थी। उनके पास वह हमेशा आता। उसकी सहायता से गाँव में एक आश्रम भी प्रारंभ किया गया

था किन्तु दुर्भाग्य से वह अपने निकट की रिश्तेदार एक बाल विधवा के प्रेम में पड़ गया। बदनामी की बातें हवा में उड़ती आयी तो कुछ समय में जयरामबाटी के भक्तों ने इस बारे में सुना। क्रोधित होकर उन्होंने श्रीमाँ से आकर कहा कि युवक को अपने पास आने न दें। संतान के कलंक की बात सुनकर श्रीमाँ को बहुत दुःख हुआ पर उन्होंने कहा, "माँ होकर मैं उसे मेरे पास आने से मना कैसे कर सकती हूँ। कठोर शब्द मेरे मुँह से नहीं निकल सकेंगे।" इनसे उस युवक का आना-जाना पहले की तरह जारी रहा।

श्री श्रीमाँ उद्बोधन भवन में (कलकत्ते में) रहती थीं। जब की बात है। वे पूजा के कमरे में थीं। अचानक उन्हें किसी की रोने की स्वर सुनाई दिया। वे बाहर आयीं तो देखा कि एक युवती रो रही थी। श्रीमाँ ने कहा—"बेटी अंदर आ, क्यों रोती हो?" युवती अधिक जोर से रोने लगी। उसने रोते रोते कहा, "माँ, मेरा चरित्र भ्रष्ट हो गया है। इस पवित्र कमरे में प्रवेश करने का भी मुझे अधिकार नहीं।" श्रीमाँ ने युवती को गले लगा लिया और उसका हाथ पकड़कर प्रेम से कमरे में ले आयीं। उन्होंने युवती के आँसू पोंछते हुए कहा, "बेटी, अब तुझे पश्चाताप हुआ है। इसलिए तू चिन्ता मत कर। जो हो गया उसे भूल जा। आज से तेरा नया जन्म हुआ है।"

एक बार एक संन्यासी मठ को छोड़कर चले जा रहे थे। श्रीमाँ के पास से विदा लेते समय वे रोने लगे। श्रीमाँ भी रोने लगीं। कुछ समय बाद अपने आँचल से आँसू पोंछकर उन्होंने मुँह धोकर आने को कहा। बाद में प्रेम से बोलीं, "मुझे भूल मत जाना। तुम भूलोगे नहीं" यह मैं जानती हूँ, फिर भी मैं कहती हूँ।' संन्यासी ने कहा, माँ, तुम क्या मुझे भूल जाओगी" श्रीमाँ ने कहा, 'माँ कभी भी संतान को भूल सकती है? समझना कि मैं हमेशा तुम्हारे पास ही रहूँगी डरना मत। जब भी कोई आपदा या दुःख आए तो याद करना कि तुम्हारी माँ है।

श्रीरामकृष्णदेव के गृहस्थ साधु नागमतादेव कहते, "पिता से माँ की दया अधिक है।" अर्थात् श्रीरामकृष्णदेव से श्रीमाँ सारदा देवी अधिक दयालु हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने भी स्वामी शिवानन्दजी को लिखा था, "मेरे लिए तो माताजी की कृपा पिता की कृपा से लाखों गुणा अधिक मूल्यवान है। माता की कृपा माता का आशीर्वाद मेरे लिए सर्वस्व है। मुझे माफ करना, पर माताजी के बारे में मैं कुछ कट्टर हूँ।"

श्रीमाँ सारदा देवी ने कहा था, "जब भी तुम विपत्ति में पड़ो तो तब याद रखो कि तुम्हारा एक माँ है।" श्रीमाँ के चरणों में हम प्रार्थना करें, "माँ तुम्हारी हमसे एक ही अपेक्षा है, कि हम तुम्हें याद करें। परन्तु हम संसार के खिलौने खेलने में ऐसे खो जाते हैं कि उन्हें बिल्कुल भूल जाते हैं। फिर भी तुम हमें भूलना मत और हाथ पकड़कर सन्मार्ग पर ले जाना, जिससे चिरकाल तक तुम्हारी गोद में आश्रय मिले।"

अनुवादक : डा० मुकेश सोलंकी

[गुजराती मासिक पत्रिका 'श्रीरामकृष्ण ज्योति' से साभार गृहीत]

देवलोक

— ब्रह्मलीन स्वामी अपूर्वानन्द
अनुवाद : स्वामी ज्ञानातीतानन्द
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

काशी में शिवरात्रि :-

सन् १९२३ में महापुरुषजी के काशी आने के बाद ही बहुत से लोग दीक्षाप्रार्थी होकर उनके पास आने लगे। उनमें सेवाश्रम की पाँच-छः सेविकाएँ भी थी। वे सभी को कहते थे—'शिव गुरु, शिवगुरु। काशी में एकमात्र शिव ही गुरु हैं। काशी में एक मात्र शिव ही गुरु हैं। काशी में दीक्षा नहीं देना चाहिए।' अन्त में केदार बाबा और सेवाश्रम के कर्मसचिव स्वामी कालिकानन्द महाराज के विशेष अनुरोध पर कनखल से लौट कर शिवरात्रि के दिन काशी से पांच कोस दूर, वरुवा के तीर पर, आदिकेशव मन्दिर के पास जाकर उन्होंने सेवाश्रम की पांच सेविकाओं को दीक्षा दिया था। दीक्षा देकर लौटते बहुत देरी हो गयी थी, उससे शरीर के विशेष थक जाने से, बिना कुछ खाए ही सो गये। उस दिन शिवरात्रि का व्रत-उपवास था, रात को भी उन्होंने कुछ खाया नहीं। नीचे के मण्डप में शिवपूजा का आयोजन हो रहा था। चार प्रहर यथाविधि शिवपूजा हुई। सर्वप्रथम साधुओं ने सस्वर 'शिवमहिम्नस्तोत्र' पाठ किया। बाद में शिव का भजन बहुत देर तक हुआ, साथ-ही-साथ साधुओं के द्वारा ताण्डवनृत्य और 'बम-बम' ध्वनि से आश्रम मानो कैलाशपुरी में परिणत हो गया था। इधर पूजा भी हो रही थी। महापुरुष महाराज यथा समय प्रथम और द्वितीय प्रहर की शिवपूजा की एवं थोड़ी देर बाद विश्राम करने गये। उनका शरीर भी उतना अच्छा नहीं था। मैंने द्वितीय प्रहर की पूजा के बाद उनको प्रणाम करके उनकी अनुमति लेकर साधुओं के साथ विश्वनाथ दर्शन के लिए गया। गम्भीर रात्रि, निर्जन परिवेश। विश्वनाथ का दर्शन, स्पर्शन और मन्दिर में बैठकर मन मुताबिक शिवपूजा करके खूब आनन्द हुआ। धतूरे का फूल ले गया था। खूब आनन्दपूर्वक गाल बजाकर उस फूल से विश्वनाथ को सजाया, स्पर्श करके पूजा किया। वह शिवपूजा इतने दिनों बाद भी स्मरणीय हो रही है। बाद में अन्नपूर्णा के मन्दिर में भी पूजा करके खूब आनन्द हुआ। तृतीय प्रहर की पूजा के पूर्व ही आश्रम लौटकर साधुओं के साथ तृतीय और चतुर्थ प्रहर की पूजा समापन करके सवेरा होते ही महापुरुषजी के लिए थोड़ा प्रसाद लेकर उनको प्रणाम करने गया। वे तब भी ध्यान के आसन पर बैठे हुए थे, प्रणाम करके विश्वनाथ दर्शन की बातें सुनाई। वे खूब प्रसन्न हुए।

श्री श्रीमाँ की पूजा के सम्बन्ध में राजा-महाराज की व्यवस्था :—

प्रातःकाल केदारबाबा महापुरुषजी को प्रणाम करके कनखल कैसा लगा, काम-काज कैसा देखा—इत्यादि पूछा। प्रसंग अनुसार महापुरुष जी कनखल सेवाश्रम में बाहर के साधू द्वारा श्री श्रीमाँ की छवि हटा देने के सम्बन्ध में जो बातचीत हुई थी वह सब बताते हुए बोले, 'इस घटना के कई महीने बाद राजा महाराज उत्तर भारत के विभिन्न आश्रम देखने के रास्ते में १९०३

ई० में काशी अद्वैत आश्रम में खोका महाराज और ब्रह्मचारी ज्ञान को लेकर लगभग एक महीने रहे थे। वे कनखल में ठाकुर घर के गोलमाल के विषय में सब कुछ जानते, लगता है कल्याण ने ही बताया था। इसीलिए एक दिन मुझसे बोले, "तारक दा हम सभी ने आलोचना करके ठीक किया है कि वर्तमान में माँ का फोटो किसी मन्दिर या ठाकुर घर में रख कर पूजा नहीं की जाएगी। बेलुड़ मठ में भी माँ की छवि ठाकुर के शयन घर में रखने की व्यवस्था हुई है – रोज एक अर्घ्य दिया जाएगा। दूसरे आश्रमों में भी ऐसा ही किया जाता है। कनखल में भी मैं जाकर वैसी व्यवस्था करूँगा इसीलिए ज्ञान को साथ ले जा रहा हूँ। ज्ञान वहाँ रह कर कुछ दिन ठाकुर की पूजा करेगा। माँ की छवि शयन घर में रखी जाएगी, रोज अर्घ्य दिया जायगा।" उन्होंने वैसा ही किया था। महाराज जो व्यवस्था करेंगे वही ठीक।'

महापुरुषजी का काशी त्याग :

शिवरात्रि के दिन इतनी दूर असमय में दीक्षा आदि देने से महापुरुष जी का शरीर थोड़ा अस्वस्थ हुआ था। इसी लिए शिवरात्रि के बाद दो दिन उन्होंने अधिक समय विश्राम लिया, खाना-पीना भी नाममात्र। ठाकुर की तिथि पूजा के दिन उनको बेलुड़ मठ पहुँचाना ही होगा, इसीलिए उसके पूर्व दिन १६ फरवरी को प्रातःकाल मोगलसराय से गाड़ी में चढ़कर मठ जाना निश्चित हुआ। गाड़ी सवेरे ९ बजे के बाद पकड़ना होगा। इसीलिए वे (१६ फरवरी) सात बजे के बीच ही काशी से रवाना हुए। इतने सवेरे उनका खाने का समय नहीं हुआ था, इसलिए प्रिय महाराज एक टिफिन कैरियर में उनका दिन का और रात का खाने का सामान लेकर उनके साथ चले। इसके अतिरिक्त दोनों आश्रमों के बहुत से साधु उनको चढ़ाने के लिए मुगलसराय पर्यन्त गए थे। नौ बजे के पहले ही सभी मुगलसराय पहुँच गए। साथ ही साथ प्रिय महाराज वेटिंग रूम में महापुरुषजी को खाने के लिए बैठा दिया। वे साधुओं के साथ बातचीत करते हुए खा रहे थे, इसी समय दस बजे के कुछ पहले गाड़ी प्लेटफार्म में आकर खड़ी हो गई। साथ ही साथ हाथ मुँह धोकर गाड़ी में बैठ गए, उनका सब सामान उठाया गया, वे जा रहे थे द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में, और मेरा था सर्वेंट क्लास का टिकट। मैं उनके डब्बे में चढ़कर उनका सामान आदि रखने लगा। इसी समय गाड़ी छूटने का समय होने से सभी साधु उनको प्रणाम करके उतर गये। मैं भी उनको प्रणाम करके नीचे उतर रहा था, तब वे हँसते-हँसते बोले 'तुम्हारा तो कुछ खाना नहीं हुआ, कुछ खरीद कर खाओ। इतना कहकर मेरे हाथ में पाँच आना पैसा दिया। मैं भी पैसा लेकर गाड़ी चलने वाली है देख कर अपने डिब्बे में बैठ गया। बाद में किसी-किसी स्टेशन में गाड़ी रुकने से मैं उनके डिब्बे में जाकर पाना पीने के लिए देता और दूसरे छोटे-मोटे कार्य करता। रात्रि में सोने के पहले एक स्टेशन में उनके डब्बे में जाकर दो आना पैसा वापस देने से वे आश्चर्य प्रकट करते हुए बोले : 'तुमने क्या कुछ नहीं खाया ?' मैंने 'खाया है' कहकर उनको प्रणाम कर रात्रि की तरह विदाई ली। उस समय तीन आने पैसे में दोनों समय का भोजन हो जाता था।

मठ में महापुरुषजी द्वारा सन्यास और ब्रह्मचर्यदान—लखक का सन्यास लाभ :

दूसरे दिन गाड़ी लिलुआ स्टेशन में रूकते ही मुंदित मस्तक अनंग महाराज और पशुपति महाराज गाड़ी में घुस कर महापुरुषजी को प्रणाम किया। उनको देखकर उन्होंने खूब आनन्द प्रकट करते हुए बोले ! 'ओ अनंग, पशुपति, अच्छा है तो ? क्या संन्यास लोगे ? वे दोनों हँसते-हँसते मठ

का कुशल सम्वाद दिया। गाड़ी हावड़ा स्टेशन पहुँचते ही देखा गया कि, अनेक साधु-भक्त महापुरुषजी को लेने के लिए आए हैं। ठाकुर की तिथि पूजा के दिन आनन्दपूर्ण परिवेश समवेत जय-ध्वनि के बीच वे मठ पहुँचे। उसी समय मन्दिर में विशेष पूजा अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ था। महापुरुषजी मन्दिर में ठाकुर प्रणाम करके अपने घर में आने के साथ ही साथ स्वामी, शुद्धानन्द, धीरानन्द, प्रकाशानन्द, शंकरानन्द और अम्बिका-नन्द आदि प्रवीण सन्यासीगण सन्यास-ब्रह्मचर्य प्रार्थियों को साथ लेकर घर में उपस्थित हुए एवं किसको-किसको सन्यास-ब्रह्मचर्य दिया जाएगा, उस विषय में आलोचना होने लगा। प्रार्थी लोग एक-एक करके प्रणाम करके प्रार्थना करने पर वे उनकी प्रार्थना पूर्ण करके आशीर्वाद करने लगे। मेरे द्वारा प्रणाम करके सन्यास की प्रार्थना करने पर महापुरुषजी प्रसन्न होकर बोले! 'तुमको सन्यास दूँगा, कनखल में ही तुमको सम्मति प्रदान की थी।' मैंने पुन: प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लिया। इस प्रकार उस दिन उन्होंने बारह लोगों को सन्यास और कुछ लोगों को ब्रह्मचर्य की अनुमति दिया था। दोपहर में खाने-पीने के बाद जब वे विश्राम करने गए, उसी अवसर पर मैंने जल्दी-जल्दी मस्तक मुंडन और श्राद्ध आदि कर्म सम्पन्न कर लिया।

सारा दिन आनन्द, समारोह, सैकड़ों भक्तों का आगमन। क्षण-क्षण में श्री गुरु महाराज की जय-ध्वनि से मठ प्रांगण भर गया था। सारी रात कालीपूजा हुई। ब्राह्ममुहूर्त में महापुरुषजी स्वामी सुबोधानन्द और मठ के प्रवीण सन्यासियों की उपस्थिति में स्वामी शुद्धानन्द के पौरोहित्य में विरजाहोम के बाद हम बारह ब्रह्मचारियों को पवित्र सन्यास धर्म में दीक्षित किया एवं कुछ लोगों को ब्रह्मचर्य भी दिया था। सभी का नाम भी उन्होंने दिया। ठाकुर के एक विशिष्ठ पार्षद से सन्यास और ब्रह्मचर्य पाकर सभी अपने को धन्य मान रहे थे। महापुरुष महाराज द्वारा बारह लोगों को सन्यास देने के बाद उसी होमाग्नि में स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने अन्यतम विदेशी शिष्य जिन्होंने पूज्यवाद तुरीयानन्द महाराज का बहुत संग किया था और जिनका नाम उन्होंने गुरुदास रखा था, उनको सन्यास दिया। नाम हुआ स्वामी अतुलानन्द। बेलुड़ मठ में रहते समय स्वामी अभेदानन्द महाराज ने और किसी को सन्यास नहीं दिया।

संन्यासी के नियम के सम्बन्ध में महापुरुष जी का निर्देश :

मठ के अनेक प्राचीन साधुओं ने कहा था: 'मठ में एक प्रथा है, सन्यास के बाद नये संन्यासी के लिए अन्तत: तीन दिन अग्निस्पर्श निषिद्ध।' इसीलिए उस दिन सबेरे महापुरुषजी मन्दिर से लौटने पर प्राचीन साधुओं की बात याद करके मैं उनको तमाकू देने में संकोच कर रहा था। उन्होंने यह देखकर मेरे सन्यासी नाम से बुला तमाखू देने के लिए कहा। मैंने साथ ही साथ मोमबती जला कर कोयला जला कर उनको तमाखू सजा कर दे दिया। तमाखू देने में विलम्ब का कारण समझ गए थे, इसीलिए तमाखू पीते-पीते हँसते-हँसते मुझको लक्ष्य करके बोले—'संन्यासी के लिए सन्यास के बाद तीन दिन अग्निस्पर्श करना निषेध है— वह सब नियम तुमको मानने की जरूरत नहीं है, विशेषत: देवकार्य और गुरुसेवा के लिए। इसके अतिरिक्त जो सब गृहस्थाश्रमियों ने विरजा-होम करके सन्यास लिया है उनके लिए यह नियम है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए त्रिवर्ण के लिए अग्नि-होम आदि का विधान है, नहीं करने से दोष होता है; परन्तु विरजाहोम करके सन्यास लेने के बाद

और उन सब कर्म का अधिकार नहीं रहता। अग्नि कहने से यज्ञाग्नि ही समझना। "अग्निस्पर्श करना नहीं"—इसका अर्थ योगयज्ञ करना नहीं, तुम जैसे काम-काज करते थे वैसा ही करना।" मैंने सिर झुका कर उनका आदेश मान लिया।

नवीन संन्यासियों की माधुकरी :

नए सन्यासियों को अन्ततः तीन दिन माधुकरी करने का नियम है। सभी संन्यासी माधुकरी करने के लिए तैयार हुए। मैं भी महापुरुषजी की अनुमति के लिए तैयार होकर उनके सामने उपस्थित हुआ। उन्होंने भिक्षा का कपड़ा देखते ही समझ लिया था, इसीलिए हंसते-हंसते कहने लगे! 'तुमको माधुकरी करने जाना नहीं होगा। तुम यहाँ ही ठाकुर के प्रसाद का माधुकरी करना, मैं प्रभाकर (पाचक ब्राह्मण) को कह दूंगा।' मैंने वही किया, अन्यान्य साधु तो देखकर हंसते-हंसते माधुकरी करने चले गए, मैं यथा समय महापुरुषजी को भोजन देकर भिक्षा की झोली लेकर ठाकुर का प्रसाद की माधुकरी करके उनके सामने ले आया।

वे उसी समय खाने बैठे थे, मेरे भिक्षा-पात्र में हाथ देकर उसमें से तीन बार मुख में डाला एवं अपने थैले में से थोड़ा प्रसाद भिक्षान्न के साथ मिला कर बोले—'अब तुम खाओ।' इससे मुझे खूब आनन्द हुआ। मैंने उनकी कृपा स्मरण करके अभिभूत चित्त से थोड़ा प्रसाद सब संन्यासी भाइयों के लिए रखकर उनके घर के पास छत पर बैठ यह माधुकरी का प्रसाद परम तृप्ति के साथ खाया। महापुरुषजी खाने के बाद बैठ कर तमाखू पीते, तब अन्यान्य साधु भिक्षा करके आए और वह भिक्षान्न उनके सामने रखते ही वे उसका स्पर्श करके थोड़ा-थोड़ा मुख में लेकर बोले—'भिक्षान्न खूब पवित्र। हम लोग भी प्रथम भिक्षा करके ठाकुर के सामने रखते हैं' उन्होंने थोड़ा-थोड़ा मुख में लिया था। ऐसे तो वे जिस किसी का अन्न खाते नहीं थे, किन्तु भिक्षान्न पवित्र समझकर उन्होंने एक कण मुख में दिया।' और बोले, 'रात्रि में सभी मठ में ही माधुकरी करना।'

(क्रमशः)

हृदय पूर्ण होने पर मुख से शब्द निकलते हैं, हृदय पूर्ण होने पर हाथ भी काम करते हैं।

हमें ऐसे हृदय की आवश्यकता है जो समुद्र सा गंभीर और आकाश सा उदार हो।

—स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर में स्वामी रंगनाथानन्द

नागपुर, ५ नवम्बर। रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के परम उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज का रामकृष्ण मठ, नागपुर में गत २८ अक्टूबर को शुभ आगमन से मठ प्रांगण में एक आध्यात्मिक उत्सव का वातावरण बन गया। पूज्य स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज ने २९ एवं ३० अक्टूबर को संध्या को मठ प्रांगण में आयोजित विशाल भक्त सम्मेलन में शंकराचार्य कृत विवेक चूड़ामणि पर बड़ा ही ज्ञानवर्धक, उत्प्रेरक एवं हियहारी व्याख्यान दिये। उन्होंने बताया कि जगत् में सार है, नित्य और अखण्ड है उसे ही हमें ग्रहण करना चाहिए तथा निस्सार तत्वों के आकर्षण में नहीं पड़कर अपने जीवन को शाश्वत सत्ता से जोड़ लेना चाहिए। श्रीमत् स्वामी योगात्मानन्दजी महाराज ने संक्षिप्त किन्तु भावपूर्ण ढंग से धन्यवाद ज्ञापन किया।

३१ अक्टूबर की संध्या को स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज के व्याख्यान का विषय था— "द मैसेज ऑफ उपनिषद्स" (उपनिषदों का संदेश)। अपने एक घंटे के व्याख्यान में पूजनीय महाराज ने विभिन्न उपनिषदों के मुख्य स्वर को रेखांकित करते हुए कहा कि प्रत्येक जीव में एक ही प्रत्यक्ष परम चैतन्य सत्ता विराजमान है। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने अंतःकरण में निहित उस अव्यक्त देवत्व को प्रकट कर अपने ब्रह्म स्वरूप में प्रतिष्ठित हों और प्रत्येक जीव में निहित उस देवत्व का दर्शन कर उसके मंगल-साधन के लिए साधना करें। व्याख्यान परम सारगर्भित, ऊर्जास्वित और चित्तोत्थापक था। अपनी सरल ललित अँग्रेजी भाषा में महाराजजी ने एक गंभीर विषय को परम बोधगम्य शैली में प्रस्तुत कर श्रोताओं को अभिभूत कर दिया।

१ और २ नवम्बर को पूजनीय स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज ने प्राय. ३०० नर-नारियों को कृपापूर्वक दीक्षा प्रदान की। इन दोनों दिनों में सायंकाल रामकृष्ण विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव श्रीमत् स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज ने क्रमश 'धर्म-जीवन की समस्याएँ' तथा 'वर्तमान युग में धर्म का प्रयोजन" विषय पर अत्यन्त चिन्तनपूर्ण एवं गंभीर व्याख्यान दिये। अपनी ललित शैली में मार्क्स, फ्रायड आदि चिन्तकों के विचारों के सन्दर्भ में उन्होंने मानव जीवन के अभ्युत्थान के लिए धर्म की प्रयोजनीयता पर विशद रूप से प्रकाश डाला।

३ नवम्बर को पुन पूजनीय स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज ने हिन्दी में "उपनिषदों की मनोहारिता" विषय पर अत्यन्त रोचक, हृदयावर्जक और सारपूर्ण व्याख्यान दिया। कठोपनिषद् की काव्यात्मकता, धान्दोग्य, वृहदारण्यक आदि उपनिषदों की दिव्यता का उल्लेख करते हुए पूज्य महाराज ने कहा कि हिन्दू धर्म सत्य पर विश्वास करने को नहीं बल्कि उसका स्वयं अनुसंधान कर उसकी प्रामाणिकता जानने पर बल देता है। हमारे ऋषि महावाक्यों को मानने नहीं उन्हें जानने को शिक्षा देते हैं। हम अपने आत्मस्वरूप को जानकर ही अभय में रहकर जीवन की धन्यता और परम शान्ति को उपलब्धि कर सकते हैं। रामकृष्ण मठ, नागपुर के वरिष्ठ साधु श्रीमत् स्वामी योगात्मानन्दजी महाराज ने प्रतिदिन धन्यवाद ज्ञापन किया।

प्रतिदिन प्रायः एक हजार प्रबुद्ध नर-नारी सभा में उपस्थित थे। रामकृष्ण मठ, नागपुर में इन दिनों एक आध्यात्मिक यज्ञ का वातावरण बन गया था। समस्त श्रोताओं को दिव्यता की अनुभूति कराता रहा।

संसार में जब आया है तो एक स्मृति छोड़कर जा, वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं।

— स्वामी विवेकानन्द

जीवन की समस्त लयों के अनुकूल

पीयरलेस

दि पीयरलेस जेनरल फाइनेन्स एण्ड इन्वेस्टमेन्ट कं० लिमिटेड
पीयरलेस भवन
३, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता—७०० ०६९

भारत की बृहत्तम नॉन-बैंकिंग बचत कम्पनी

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३

विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की बहुप्रतीक्षित बृहत् जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में

स्वामी गम्भीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की यह मूल बंगला जीवनी
उनका अत्यन्त प्रामाणिक और अन्तर्दृष्टिसम्पन्न
जीवन-चरित मानी जाती है। सर्वदूर समादृत यह ग्रन्थ अब
हिन्दी-भाषी पाठकों को उपलब्ध हुआ है। हिन्दी में
स्वामी विवेकानन्दजी के बृहत्, प्रमाणभूत जीवनी का
अभाव था, जिसकी पूर्ति इस प्रकाशन से अब
हो गई है।

हर खण्ड करीब डमाई ४०० पृष्ठों का है।

हर खण्ड का मूल्य रु. ५०/- *तीन खण्डों का एकत्रित मूल्य रु. १२०/-*

प्रकाशक :

रामकृष्ण मठ

(प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सईदपुर, पटना-४ में मुद्रित।